आत्मा का लक्षण।

मन बुद्धि इन्द्रिन को कारण चलाइबे को सकल उपाधिन तें न्यारो रहै गात मैं।
जैसे घर घर माँहिँ व्यापक अकाश अरु न्यारो सुख दुःखनि ते देखो अवदात मैं।
जैसे रवि ज्योति आगे सोवत कै जीव जागै उठि उठि काम लागै सबै परभात मैं।
अज़ अविनाशी परिपूरण प्रकाशी सुखदेव सुखराशी ऐसो नित्य लखै आतमैं॥

डाक्टर जी० ए० गि्रयर्सन, सी० आई० ई० (D. Litt.)

गुणि-गण-गणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भवा यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद वन्ध्या कीदृशी भवति?॥ * पञ्चतन्त्र।

हिन्दी के खेत में काम करनेवालों के बीच ऐसा शायद ही कोई निकलेगा, जो डाकृर ग्रियर्सन के नाम को न जानता हो। जैसे संस्कृत के साथ लोग मैक्समूलर साहब का नाम लेते हैं, ठीक उसी तरह डाकृर साहब का सुनाम भी हिन्दी भाषा के साथ लिया जाता है। यद्यपि सभी लोग डाकृर साहब के नाम को आप ही याद करते हैं, तथा पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने अपने 'बिहारी-बिहार' में आपकी जीवनी भी छाप दी है; पर तै भी, डाकृर साहब के चित्र को, इस समय, जबकि वे स्वदेश को लौट गये हैं और कदाचित् ही अब उनका दर्शन हम लोगों को यहां मिले, साहित्य के सरस्वती-नामक मन्दिर में प्रतिष्ठित कर देना और साथ ही उनकी कीर्त्ति भी उसमें कुछ अङ्कित कर देना आवश्यक समझा गया। †

इस पृथ्वी पर जन्म लेकर डाकृर ग्रियर्सन ने जितना काम किया और जितना नाम कमाया, वैसा विरले पुण्यवानों के भाग्य में बदा होता है। आपकी कीर्त्ति की चाँदनी इस देश को और योरप को भी उजियाली पहुंचा रही है। आप अनेक भाषाओं के पण्डित हैं; पर सबसे अधिक प्रेम आप हमारी मातृभाषा हिन्दी ही पर रखते हैं।

आयरलैण्ड के डबलिन परगने में राथफर्नहम हौस (Rathfarnham House) नामक एक घराना है। उसी घराने के नायक श्रीयुत जार्ज अब्रहम ग्रियर्सन, एल. एल. डी., बैरिस्टर, के डाकृर साहब बेटे हैं। इनका जन्म तारीख़ ७वीं जनवरी सन् १८५७ को हुआ, अर्थात् इस समय आपको उम्र ४८ वर्ष की है। पहले ये शियुसबरी स्कूल में डाकृर बेञ्जमिन हालकेनेडी से, और, फिर उस विद्वान् के केम्ब्रिज में ग्रीक भाषा के आचार्य हो जाने पर, पादरी एच. डबल्यू. मास से विद्या पढ़ते रहे। डबलिन नगर के ट्रिनिटी कालेज में इन्होंने, १७ वर्ष की उम्र में, प्रवेश किया, जहां गणितशास्त्र की परीक्षा को बड़ी नेकनामी के साथ पास किया। इसके पीछे प्राफ़ेसर राबर्ट एट्किन्सन से इन्होंने संस्कृत सीखी। "और मीर औलाद अली के पास हिन्दुस्तानी भाषा पढ़ने लगे।" * Sanskrit Exhibition नामक पारितोषिक दो बार आपने पाया। ट्रिनिटी कालेज के इतिहास में यह बात

---

* गुणियों की गिनती के आरम्भ ही में जिसके नाम पर खाइर लिखनी नहीं चलती; अर्थात् जिसका नाम नहीं लिखा जाता, यदि माता उस बेटे से बेटेवाली कही जावे, तो कहिए बन्ध्या कैसी होगी?

† डाक्टर साहब के चित्र के लिए हम डाक्टर शर्मकी महाशय के कृतज्ञ हैं।

* यह नोटिस, The Biographer पत्र के लेख और निज की चिट्ठियों के अनुसार लिखी जा रही है। उलटे कामाओं में अवतरण बिहारी-बिहार से दिये गये हैं।

पहली बार हुई और तब तक बिलकुल नई थी। हिन्दुस्तानी (विहारीविहार के अनुसार "हिन्दी") भाषा का भी पुरस्कार इन्होंने पाया। संस्कृत और हिन्दुस्तानी भाषाओं में विद्वत्ता के लिए, युनिवर्सिटी भर के सबसे बड़े पारितोषिक, उस समय के, यही थे। प्रॉफ़ेसर एट्किन्सन् ही के प्रसाद से, पूर्वी, विशेषकर हमारे देश की भाषाओं की ओर इनका यह अटूट प्रेम उत्पन्न हुआ। और मुख्यतः इन्हीं भाषाओं के कारण आपकी गिनती पूर्वी विद्वानों में हुई।

सन् १८७१ में, हिन्दुस्तान की सिविल सर्विस परीक्षा पास करके, सन् ७३ में ये उस देश में पहुंचे जिसकी भाषाओं ने इनके मन को पहले ही से लुभा रक्खा था। पहले पहल ये बङ्गाल के जशोर स्थान में नियुक्त हुए; पर जल्दी ही उस समय के अकाल से दुःखित विहार प्रान्त को, दुर्भिक्षसम्बन्धी प्रबन्ध के सर्कारी मुहकमे में, भेजे गये।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास लिखते हैं—"बस भारतवर्षीय पुरुषों के चाल व्यवहार जानने को तथा एतद्देशीय सब पुरुषों से मिलने को साहब को यह बहुत अच्छा अवसर मिला। जब इनने तिरहुत के निवासियों को स्वतन्त्र भाषा बोलते देखा और देखा कि वहां के छोटे लोग तिरहुता भाषा छोड़ हिन्दी बँगला आदि कुछ भी नहीं बोल सकते हैं, तब उनकी चित्तवृत्ति इधर झुकी कि जो यूरोप-देश-निवासी केवल बँगला तथा हिन्दी जान कर बड़े अधिकारी हो कर इस देश में आते हैं, उन्हें इन दुखिया प्रजाओं की पुकार सुनने में कितना कष्ट होता होगा। बस, चट पट इनने स्थिर किया कि इस देश की भाषा का कोष तथा व्याकरण बनाना चाहिए। इसका नाम साहस है और इसका नाम वीरता है कि स्वयं भी जिस भाषा को आज तक न जानते थे, जिस भाषा के मुद्रित ग्रन्थ नाम मात्र को भी अप्राप्य थे, उस भाषा को केवल जानने की नहीं किन्तु उसके व्याकरण बनाने की प्रतिज्ञा की जिसमें नवीन पुरुष सहज में समझ सकें। ओः एक हमारे देश के पण्डित हैं जो कुछ न्याय व्याकरण के खर्रे घोष अहञ्च त्वञ्च कर…… पण्डित बन बैठते हैं…………। और कहाँ यह विद्वान् कि स्वदेश में कितनी भाषा तथा विद्या को सीख चुके हैं; अब छात्रता छोड़ शासनकार्य करते हैं, तो भी नवीन नवीन विद्याओं के सीखने के लिए वही पिपासा है और गुप्त विद्याओं को प्रगट करने के लिये महर्षियों का सा उत्साह है।"

पीछे इन्होंने हवड़ा, मुर्शिदाबाद और रङ्गपुर में कई वर्ष तक काम किया। इन ज़िलों में सर्कारी कर्त्तव्यों को पालते हुए, इन्होंने सर्कारी परीक्षा में, बङ्गभाषा और संस्कृत में High Proficiency (उच्चविद्वत्ता) पास करने की पदवी प्राप्त की; और बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी नाम की विद्वानों की सभा में सम्मिलित हो कर उसके ये बराबर कार्य-कर सभासद बने रहे। रङ्गपुर की विचित्र भाषा का इन्होंने व्याकरण बनाया और उस भाषा के नमूने भी प्रकाशित किये।

सन् १८७७ में दर्भङ्गा के मधुवनी स्थान में, आप वहाँ के सब-डिविज़नल् ऑफ़िसर हो कर, आये। बङ्गाल से बदल आकर यहाँ आप ३ वर्ष से कुछ अधिक रहे। "बस मिथिला भाषा के व्याकरण बनाने का यहाँ इनको पूर्ण अवसर मिला। इस समय इनके पास कई एक लेखक वेतन पाते थे और इस तिरहुत भाषा का जो कुछ गान, पद्य आदि मिला, उसका संग्रह करते जाते थे। पण्डित बबुजन झा, पण्डित भाना झा, पण्डित हली झा, पण्डित चन्दा झा प्रभृति के साहाय्य से, साहब ने तिरहुत भाषा के विशेष गानों का संग्रह किया और पण्डित हली झा ने तिरहुत भाषा का एक व्याकरण बनाया था, सो लिखा हुआ, उनने साहब को दिखाया। उससे भी इनने बहुत साहाय्य लिया। और मुक़दमों में जितने गवाह आदि आवैं उनका इज़हार साहब तिरहुती ही में लेने लगे; और उनके शब्दों को ध्यान देकर सुनने लगे; और जो नया शब्द हो उसे उसी क्षण लेखकों को लिखवाने लगे।

सुना है कि जो पण्डित लोग साहब के यहाँ आते थे उन्हें साहब कुछ भेंट भी देते थे। तिरहुत में २ रु० और एक जोड़ा धोती प्रायः पण्डितों को दिया जाता है, सो इस बिदाई के लिये साहब भी बहुत पण्डितों के यजमान हो गये थे। तिरहुत के प्रसिद्ध महाकवि विद्यापति के गान और मनबोध के हरिवंश ने साहब को बहुत से प्रयोगों का परिचयी बनाया*। साहब ने इस श्रम के फलस्वरूप तिरहुत भाषा का व्याकरण प्रकाशित किया† और अति दुर्लभ मनबोध के हरिवंश की भी ग्यारह अध्याय प्रकाशित की (इतनी हीं मिली)।"

सन् १८८० में, साहब को इङ्गलैण्ड जाना पड़ा। इसका कारण यह था कि रङ्गपुर में आप को ज्वर आने लगा था और उसका दौरा बराबर सन् १८८० तक होता रहा। स्वदेश जा कर, उसी वर्ष, साहब ने डबलिन के डा० मारिस कालिस साहब की बेटी श्रीमती ल्यूसी से अपना विवाह किया और भारतवर्ष को प्रत्यागमन किया। यहां आने पर इनके हाथ में सर्कार ने एक विशेष काम सौंपा। यह काम कैथी अक्षरों के, अपने नीरीक्षण में, टाइप ढलवाने का था। बायोग्राफ़र (The Biographer) नामक पत्र लिखता है—"अब तक सब सर्कारी विज्ञापन और गवर्न्मेंण्ट गज़ट फ़ारसी अक्षरों में छपते थे जिन्हें बिहार के बहुत थोड़े से पढ़े लिखे लोग ही समझ सकते थे। इस दिन से ये (सर्कारी कागज़), उन अक्षरों में छपने के कारण जिन्हें बिहार का हरएक गवँहाँ, जो थोड़ा भी पढ़ सकता था, जानता था,—प्रायः सभों के समझने के योग्य हो गये। यह सुधार अधिकतर मि० ग्रियर्सन के ही प्रयत्नों की बदौलत हुआ*"। कैथी अक्षरों के बारे में पं० अम्बिकादत्त जी इस भांति लिखते हैं—"इस समय बिहार में शिक्षाविभाग में कैथी अक्षरों का प्रचार हुआ था और कैथी ही में विविध पुस्तक पढ़ाने की शिक्षा विभाग की आज्ञा हुई थी; परन्तु महाजनी की भांति कैथी में न तो ह्रस्व दीर्घ ही का विभेद था और न युक्ताक्षर ही थे। सो गवर्नमेण्ट ने इनको स्वातन्त्र्येण इस काम पर नियुक्त किया कि ये कैथी के अभाव को पूरा करें और तदनुसार टाइप ढलवावें।" सन् १८८१ में कैथी अक्षरों पर एक इनकी किताब भी कलकत्ते में छापी गई।

इस काम के पूरे हो जाने पर, ग्रियर्सन साहब पटने के ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट बनाये गये। कभी कभी कार्यविशेष के साधन के निमित्त, थोड़े समय के लिये, अन्यत्र चले जाने को छोड़, ये पटने ही में कई वर्ष तक रहे। वहीं पर पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, क़ाज़ी साहब रज़ाहुसैन, राय जयकिशुनदास बहादुर, बाबू रामदीनसिंह आदि देशी महाशयों से आपकी मित्रता हुई। अब ये सज्जन परलोकवासी हो गये हैं। इसी समय, डाक्टर साहब ने बिहारी भाषा की साधारण बोलियों के सात व्याकरण बनाये और बिहार के किसानों की रहन सहन पर Bihar Peasant Life नामक पुस्तक लिखी। इन पुस्तकों के बल योरप के पूर्व-देश-सम्बन्धी पण्डितों के सामने इनका नाम चमकने लगा। सन् ७३-७४ की महँगी में जब कि ये थोड़ी उम्र के एक असिस्टैंट मैजिस्ट्रेट थे, इन्होंने जो एक काम आपही अपने ऊपर उठा लिया था उसका एक खण्ड इन पुस्तकों के साथ आज समाप्त सा हो गया। ऊपर

* "इसी समय इनने कचहरी और मधुवनी बस्ती के बीच में एक उत्तम बाज़ार बसाया जो आज तक "ग्रियर्सन गञ्ज' नाम से प्रसिद्ध है॥"

† An Introduction to the Maithili Language of North Bihar, containing a Grammar. Asiatic Society, Bengal. Price Rs. 6. 'बिहारी-बिहार'।

* "Hitherto, all Government notifications and the *Government Gazette* had been printed in the Persian character, which could only be read by a small minority of the educated people of Bihar. From this date they were made generally intelligible by being printed in the character familiar to every Bihar villager who could read at all. This reformation was in great measure due to Mr. Grierson's personal exertions." The *Biographer* for 1894, page 138.

कहा गया है कि उस समय दीन प्रजालोगों की बात समझने में नितान्त कठिनाई थी। पर अब इन ग्रन्थों के छपने से बिहार की लग भग ढाई करोड़ प्रजा की भाषा का सारा भेद, थोड़े श्रम से, चाहे जो हाकिम सीखले। इन दोनों ग्रन्थों को (१–Seven Grammars of the Dialects and Sub-dialects of the Bihari Language, २–Bengal Peasant Life.) बङ्गाल गवर्न्मेण्ट ने प्रकाशित कराया है।

"अब इन्होंने बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी, रायल एशियाटिक और जर्मन ओरियण्टल सोसायटी के सामयिक पत्रों में गहन लेख लिखना आरम्भ किया। सन् १८८५ में इन्होंने फर्ली छुट्टी ली जिसका अधिकतर अंश जर्मनी में बिताया।" इसी वर्ष इनके Curiosities of Indian Literature (भारतवर्षीय साहित्य की अनोखी बातें) और Vidyapati and his Contemporaries (विद्यापति और उनके समकालीन कवि) नामक निबन्ध निकले। सन् १८८६ में, आस्ट्रिया की वीना नगरी में होनेवाली, पूर्वी विद्वानों की, Congress of the Orientalists नामक, महासभा में, ये हमारी गवर्नमेंण्ट की ओर से प्रतिनिधि बना कर भेजे गये। इस सभा में, इन्होंने, भारतवर्ष के मध्य-सामयिक-भाषा-साहित्य पर एक प्रबन्ध सुनाया जो उस विद्वन्मण्डली में बहुत सराहनीय हुआ। उसी प्रबन्ध को पल्लवित करके Modern Vernacular Literature of Hindustan नामक ग्रन्थ,* सन् १८९० में हमारे साहब ने, एशियाटिक सोसायटी (बङ्गाल) के द्वारा, प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ भाषाप्रेमियों में डाकृर साहब की पुस्तकों में से अधिकतम प्रसिद्ध है।

यहां लैाटने पर, सन् १८८७ में ये गया के कलेकृर और मैजिस्ट्रेट बनाये गये। वहाँ १८९२ तक इन्होंने काम किया। वहाँ पर रह कर आपने 'गया ज़िले पर नोट्स' (Notes on the District of Gaya) नामक ग्रन्थ लिखा जो गया का एक गज़ेटियर (भूगोल) सा है; साथ ही इसमें वहाँ के निवासियों की दशा, रहन सहन, किम्वदन्ती और किसानों का बहुत कुछ हाल है।

इसी समय में, ये बिहारी भाषा के Comparative Dictionary (तारतम्यबोधक अभिधान) के लिए मसाला जुटा रहे थे। इसे डाकृर ए० एफ़० रूडल्फ़ हार्नली, एम्० ए०, और ये मिल कर रचते थे। इस कोश के दो ही भाग निकल सके। "अ" से "अङ्गुलि" तक शब्दों का दोनों भागों में विस्तार है। बङ्गाल सेक्रेटेरियट प्रेस में यह छापा गया है। दोनो भागों का मूल्य ५) है। प्रथम भाग

* "हिन्दुस्तान का आधुनिक देशभाषा-साहित्य।" यह पुस्तक बड़े श्रम से छानबीनपूर्वक लिखी गई है। हिन्दुस्तान के आधुनिक देशभाषा-साहित्य के वर्णन में केवल हिन्दी और उसके रूपान्तरों के ही साहित्य की चर्चा की गई है। 'हिन्दुस्तान' से अभिप्राय उस भूमिखण्ड से है जो राजपूताना सहित, गङ्गा-यमुना के बीच, कोशी से पश्चिम है और जिसमें पञ्जाब और निचला-बङ्गाल (Lower Bengal) नहीं आते। आधुनिक भाषा में प्राकृत, अरबी, फ़ारसी, किसी की गिनती नहीं हो सकती। किताबी (Literary) उर्दू को भी डा० साहब ने बाहर रक्खा है, इस लिए कि वह इस देश की औरस उपज नहीं, वरन् विदेशी योग से पैदा हुई है। इस पुस्तक में, मारवाड़ी, हिन्दी, बिहारी और उनके विविध उपभाषाओं के साहित्य का वर्णन है।

युरोपीय विद्वान् पहले संस्कृत की ओर झुके, फिर पाली और बाद प्राकृत की ओर। डा० साहब ने उन लोगों के प्रति अपनी भूमिका में कहा है कि एक पग और उल्लंघन करने से आप गैाड़ीय साहित्य में पहुँच जांयगे। हेमचन्द्र ११५० ई० में हुए और ११७२ में मरे; चन्दबर्दाई ११९३ में मरे। डा० साहब ने, संस्कृत, प्राकृत और दानपत्रों से, उन लोगों को, इस तरफ़ झुकने को युक्ति-युक्ति कहा है।

इस पुस्तक में, एक अनुक्रम दिया है जिसमें देश-भाषा-साहित्य का संक्षिप्त वर्णन है, और ९५२ कवि और लेखकों की कहीं संक्षेप और कहीं विस्तार से चर्चा है जिसमें उनके होने का समय भी दिया गया है। भक्तमाल, शिवसिंहसरोज आदि १८ देशी पुस्तकों के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसमें डाक्टर साहब ने एक पंचायती फ़ैसले का फ़ोटोग्राफ़ भी दिया है जिसमें कुछ भाग तुलसीदासजी के हस्ताक्षरों में लिखा माना जाता है। इसके देखने से मालूम होता है कि गोस्वामी जी ने बराबर, जहां काम पड़ा, चन्द्रबिन्दु का व्यवहार किया है। इससे अब के उन लेखकों को शिक्षा लेनी चाहिए जो अनुस्वार और आंनुनासिक दोनों के लिए अनर्गल सब कहीं अनुस्वार-चिन्ह ही देते चले जाते हैं।

के आदि में एक बहुत अच्छी अनुक्रमणिका दी गई है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो बड़े काम का होता *।

यह शब्द-कोश सर ऐशली एडन साहब को, जो बङ्गाल के छोटे लाट थे, समर्पित किया गया है; क्योंकि इन्हीं लाट महाशय ने बिहार की अदालतों में वहां के जातीय अक्षरों को जारी किया था और बिहार में इन्होंने पहले पहल, सर्कारी तौर पर, एक जातीय भाषा का अस्तित्व माना था। *

सन् १८९१ में डाक्टर ग्रियर्सन साहब का लिखा "पियदसी (अशोक) के शिलालेख" नामक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ जो फ़रासीसी विद्वान् सेनार्ट (M. Senart) के प्रसिद्ध ग्रन्थ के दूसरे खण्ड का अनुवाद है।

---

* पढ़नेवालों को इस अभिधान की बानगी दो उदाहरणों द्वारा से, दिखाये बिना हमसे आगे नहीं बढ़ा जाता।

बिहारी शब्द　　　अंग्रेज़ी में विवरण।

अकोर। (काव्य, अकोरा) तद्भव शब्द †। विशेष्य। पुं०। अर्थ—(क) रिशवत, (घूस)। इससे पुनः, (ख) जिसका बछवा मर गया हो ऐसी गाय या भैंस को चारा खिलाने का यत्न, (ग) खेत में मज़दूरों का, काम के बीच, जलपान। खण्ड वाक्य—अकोर खाब = घूस लेना। उदाहरण, "जनु सभीत दै अकोर—राखे जुगरुचिर मोर—कुण्डल छवि निरखि चोर—सकुचत अधिकाई" तुलसीदास, गीतावली ३।२ (इसका अंग्रेज़ी में अर्थ)। "अँगिया तोरी रे अदालत, जोबन हाकिम जालिम जोर। जाय फँसे नाहक लालच बस ये दोउ नैना चोर। छूटे प्यारी मन-मुनसी को दै के प्रान अकोर।" लाल खड्गबहादुर मल्ल, सुधाबिन्दु ३७। "जहँ अकोर तहँ नेक न राजू। ठाकुर केर बिनासहि काजू।" पद्मावत ६७१।२। "टका लाख दस दीन्ह अकोरा॥"

उत्पत्ति—सं० उत्कोच (संदिग्ध)। प्राकृत—उक्कोचो, उक्कोअडो। हिन्दी और बिहारी-अकोर। अन्य गौड़ भाषाओं में नहीं देख पड़ते।

अखार। (अखाड़, अखाढ़)। काव्य-अखारा; प्राचीन, अखारा; प्राचीन अधिकरण एक वचन-अखारें, बहुवचन-अखारेन्ह। तद्भव। संज्ञा। पुं। अर्थ—कुश्ती लड़ने की जगह। इससे पुनः—कोई खुली जगह जहाँ खेल, तमाशा, या कसरत हो। खण्डवाक्य-अखारा खेलब॥ उदाहरण-(क) नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं।" तुलसीदास, सुन्दर काण्ड १,८। (ख) "कनौली में सात सौ पट्ठा अखारा खेलवैत अछि"। गीत दीनाभद्रिक, नैपाल तराई। (अर्थात् वह कनौली में सात सौ कुश्तीबाज़ों को लड़वा रहा है) (ग) "दोउन बल भर जोवन गाजे। अप्सर जानु अखारें बाजे॥" पद्मावत, ४८०।३ (घ) "लङ्कसिखर ऊपर आगारा। तहँ दसकन्धर केर अखारा" तु० दा० लङ्का, १४।४। "लङ्का सिखर ऊपर आगारा। अति विचित्र तहँ होइ अखारा॥ बाजहिं ताल-पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रवीना॥" तु० दा०, लङ्का ११-७। उत्पत्ति—सं० अक्षवाटः = प्राकृत, अक्खआड़ो। गुजराती—अखाड़ो। मराठी—अखाड़ा। पञ्जाबी—अखाड़ा। हिन्दी—अखाड़ा (रा)। बिहारी—अखाड़ (र)। बङ्ग, उड़िया—आखड़ा; आसामी—आखरा।

विशेष—"नाना अखारेन्ह भिरहिं" में, (रेन्ह) में ह्रस्व एकार है। बिहारी तथा और कई आधु-

† तद्भव वे शब्द कहे जाते हैं जो संस्कृत से निकले हों पर रूप वही न हो। जैसे राय, भाई, खेत, दहिन, आन (आज्ञा)। तत्सम वे हैं जो संस्कृत के समान रूप रखते हों। जैसे, राजा, भ्राता, क्षेत्र (क्षेत्र), दक्षिण, आज्ञा।

* "There is a peculiar fitness in dedicating the first Dictionary of the Bihari Language to you; for it was you who, when ruling over these provinces, succeeded in making the national character of the country current in the law courts, and who first officially recognised the existence of a national language in Bihar.

To You, Sir, therefore, in grateful remembrance of the beneficient reform which you introduced, this work is dedicated by—The Authors."



श्रीमती ऐनी बेसण्ट

National Library,
Calcutta-27.

गया में आपके शासन से प्रजा बहुत ही प्रसन्न रही। वहां पर एक बार हिन्दू मुसल्मानों में झगड़ा होने की सम्भावना हुई थी। पर डाकृर साहब के सुप्रबन्ध से दोनों दलवाले शान्त ग्रैार प्रसन्न रहे। एक गाँव में एक सती जल गई थी; पर उस विषय में भी कुछ उपद्रव न हुआ।*

बङ्गाल हाते के जिन ज़िलों में बहुत अधिक सरकारी काम रहता है, गया उनमें से एक है। इससे, बराबर पाँच वर्ष तक कठिन मेहनत करने के कारण साहब के शरीर की स्वस्थता बिलकुल बिगड़ गई। निदान, सन् ९२ में उन्होंने आपही अपनी बदली हबड़े को, जहां काम कुछ कम था, करा ली। यहां वे सन् १८९६ तक रहे। हबड़े में आने से ये अपने लिखने पढ़नेवाले मित्रों के बीच आ गये ग्रैार वहां से बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी भी समीप ही पड़ी। थोड़े ही समय में (सन् १८९४ में) आप इस सभा के Honorary Philological Secretary (अवैतनिक भाषा-सम्बन्धी मन्त्री) चुने गये। सन् १८९४ में, ग्रियर्सन साहब, जनेवा नगरी में होनेवाली पूर्वी विद्वानों की महासभा (कांग्रेस) में, बङ्गाल गवर्नमेण्ट, बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, ग्रैार कलकत्ता युनिवर्सिटी की ग्रोर से प्रतिनिधि होकर गये।

इसी वर्ष डाकृर साहब ने बिहारी-सतसई का अपना संस्करण प्रकाशित किया। इसके तैयार करने में डा० साहब ने कई वर्ष तक परिश्रम किया था। सतसई ने ही साहब के नेत्रों को अधिक विकृत कर डाला; पर तैाभी वे बिहारीलाल से अलग न हुए। इस संस्करण में उन्होंने लालचन्द्रिका की बहुत शुद्ध टीका दी, ग्रैार जहां जहां आवश्यक समझा दूसरे टीका-कारों के भी मत टिप्पणी में दिये। इसकी भूमिका बहुत लम्बी है जिसमें काव्य ग्रन्थ "भाषभूषण" का पूरा अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिया गया है। अन्त में, छह (६) उत्तम टीका-कारों के मत के अनुसार दोहों का अङ्क-चक्र तथा अनेक दोहों के विचित्र अर्थ ग्रैार शङ्का-समाधान भी आपने दिये हैं; तथा स्थान स्थान पर कठिन विषयों की व्याख्या भी की है। यह पुस्तक भी गवर्नमेण्ट के लिए तैयार की गई थी। आपने मलिक मुहम्मद जायसी की "पद्मावत" का भी एक संस्करण छपवाया है।

वीना नगरी में उस समय प्रोफ़ेसर बूलर, भारतवर्षीय आर्य-जन्तुओं के अनुसन्धान का एक विश्वकोष (Encyclopaedia of Indo-Aryan Research) छाप रहे थे। उसके लिए यहां की देश-भाषाओं पर एक निबन्ध लिखने में साहब का नेत्र रोग बहुत बढ़ गया। छोटे अक्षरों का पढ़ना लिखना दुष्कर होगया। ऐसी दुःख की अवस्था में भी डाकृर ग्रियर्सन ने अपना काम नहीं छोड़ा। लेखक, टाइपराइटर, चश्मे आदि की सहायता से वे बराबर लिखते पढ़ते रहे; यहां तक कि काश्मीरी भाषा का एक प्राचीन व्याकरण भी, इसी अवस्था में, पं० बालमुकुन्द काश्मीरी की सहायता से, प्रकाशित किया। ठीक है—

"चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम्।"

'बिहारी-विहार' से मालूम पड़ता है कि नेत्र-रोग के कारण सन् १८९४ के बाद ग्रैार ९६ के पहले, साहब को एक बार फिर विलायत जाना

निम्न भाषाओं में (ए) (ऐ), ग्रैार (ओ) (ग्रै) ह्रस्व भी हैं जिनको अब तक किसी ने, कदाचित्, नहीं पहचाना था। डा० हार्नली ने इनके बारे में अपने व्याकरण में भी लिखा है। इस शब्द-कोश में उसके रचयिताओं ने इन निर्बल दीर्घ (=ह्रस्व) स्वरों के लिए नये चिन्ह निर्मित किये हैं। पाणिनि ने "अच्" मात्र को ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत माना है। "ऊकालोज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः"। १।२।२७। अष्टाध्यायी। पर पीछे के संस्कृत वैयाकरणों ने (ए) (ऐ) आदि को दीर्घ ही कहा है। साधारण प्रेसों में इन नये चिन्हों के टाइप न रहने के कारण हमने पुराने ही चिन्हों का प्रयोग किया है।

* "बिहारी-विहार"।

पड़ा था। सन् १८९५-९६ के लिखे कई एक बहुत अच्छे और गहन लेख एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में देख कर और उससे, नेत्र जैसे उपयोगी, आवश्यक और प्रिय अवयव की, साहब द्वारा उपेक्षा, का विचार करके "यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ" आदि महात्माओं के प्रकृति-सिद्ध लक्षणों का बार बार स्मरण होता है।

सन् १८९६ में आप बिहार के अफ़ीयून-एजेण्ट हुए। बांकीपुर में आपकी स्थिति हुई। सन् १८९८ में आप Linguistic Survey 'भाषा सम्बन्धी जाँच' नामक एक विशेष कार्य पर सर्कार से नियुक्त होकर शिमला गये। सन् १८९९ में आप विलायत को लौट गये* और भाषा सम्बन्धी जाँच का काम वहीं पर, अब भी, Superintendent of the Linguistic Survey of India (भारतवर्षीय भाषा सम्बन्धी जाँच के सुपरिण्टेन्डेण्ट) नामक सर्कारी उपाधि को धारण करते हुए उस भाषा-सम्बन्धी जाँच के काम को कर रहे हैं। यह काम अब बिलकुल समाप्ति पर आपहुँचा है।

इस जाँच की पूरी रिपोर्ट अभी नहीं छपी। बंगभाषा, बिहारी और उड़िया पर रिपोर्ट छप कर भारतवर्ष में हाल ही में आई है; पर और और जिल्दें अभी प्रकाशित नहीं हुईं। कई जिल्दों में यहां की विविध भाषाओं की केवल तालिका तैयार की गई है। हमें विश्वास है कि यह पूरी रिपोर्ट छप जाने पर डा० साहब के हाथ से एक बहुत बड़ा काम पूरा हो जायगा†।

सन् १९०३ में सिविल सर्विस से, आप इस्तेफ़ा देकर, अलग हो गये।

उपसंहार।

डाकृर ग्रियर्सन, ट्रिनिटी कालेज (डबलिन) के बी० ए०, हेल युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) से "डाकृर" (Ph. D., Honoris causa) उपाधि प्राप्त, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फ़ेलो हैं। सन् १९०२ में, डा० साहब को उनके पुराने विद्यालय ट्रिनिटी कालेज ने Doctor of Letters (D. Litt. साहित्याचार्य) की पदवी से सम्मानित किया। डाकृर महाशय, बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, जर्मन ओरियण्टल सोसाइटी, रायल एशियाटिक सोसाइटी, फ़ोकलोर सोसाइटी, आदि विद्वत्सभाओं के सभ्य हैं; अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी के भी आप सभ्य हैं।

डाकृर साहब के लेख।

इनके लेख, जिनमें से बहुत ही कम का ऊपर उल्लेख किया गया है, अगणित हैं। इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, और एशियाटिक सोसाइटियों के जरनल इनके निबन्धों से भरे पड़े हैं। असीम विद्याभिरुचि के कारण अध्ययन में आपके घोर परिश्रम का अनुमान, उनके चित्र ही को देखकर, पाठक सहज में कर सकते हैं। इन्होंने जो कुछ लिखा, वह मुख्यतः विदेशियों के लिए। डा० साहब का यह विचार हुआ कि बिना इस देश की भाषा जाने और बिना यहांवालों की रीति नीति समझे हाकिम लोग सुशासन नहीं कर सकते। यह विचार बहुत ठीक है और इस अभाव को डा० साहब ने चिर-परिश्रम के अनन्तर दूर करने के बहुत कुछ साधन भी बना दिये। अतः "नरपति और जनपद" दोनों के वे हितकर्त्ता हुए। प्रत्यक्ष है कि डा० साहब जैसे भाषाज्ञ और देशज्ञ से प्रजा बराबर उपकृत, सुखी, और प्रफुल्लमन रही है। जब भाषा ही अच्छी तरह हाकिम न जानेगा तो प्रजा की बातें क्या समझेगा? अस्तु, साहब का श्रम सर्वथा सफल है। हमारे शासकों को न केवल हमारी भाषा के कुछ व्याकरण ही सिखला कर उन्होंने रहने दिया; वरन् उनको हमारे साहित्य को भी पढ़ने का मार्ग खोल दिया। साहित्य जन-समुदाय के हृदय का विकाश है। हमारे साहित्य को पढ़ने से वे हमारे हृदय को पढ़ लेंगे। सर्कारी शासन में जो सहायता वस्तुतः

* इस समय डाकृर साहब का पता इस तरह है —
Rathfarnham, Camberly, Surrey, England.

† इसके तैयार करने में हर एक जगह से एक ही आख्यान का वहां की प्रचलित भाषा में अनुवाद और गीतों के नमूने मंगाये गये थे।

इनसे पहुंची है वह सैकड़ों क्या सहस्त्रों कोरे हाकिमों से न पहुंचती। पञ्चतन्त्र में एक श्लोक है कि ऐसे राजपुरुष बहुत दुर्लभ हैं जो नरपति ग्रैार जनपद, ग्रर्थात् राजा ग्रैार रिग्राया, दोनें के हितकर्त्ता हों। सो ऐसे ही दुर्लभ लोगें में हम इनको मानते हैं। एक महाशय ने कुछ खिँचकर हमसे कहा कि ग्राप इन ग्रङ्गरेज़ी में लिखनेवाले पण्डितों के इतने भक्त हैं, पर क्या इनमें से किसी ने किसी देशभाषा में कभी कुछ भी लिखा है। ऐसी समझ के लोग, हमें विश्वास है, बहुत कम होंगे। उनके लिए यही उत्तर है कि देशी भाषाग्रों में लिखने पर उनको समझने ग्रैार ग्रादर देनेवाले कितने लोग मिलेंगे? फिर, क्या हम उनके लेखों को भाषान्तर करके लाभ नहीं उठा सकते। हमें ग्राप कुछ न करना पड़े ग्रैार सब कुछ दूसरे ही करदें! एक ये लोग हैं जो रातदिन मेहनत करके ग्रपनी भाषा को ग्रलंकृत करते जाते हैं; ग्रैार एक हम जिन्हें ग्रपने ग्रक्षर लिखते भी लाज लगती है। विदेशी भाषा में लिखने से विदेशियों का हम पर ग्रच्छा ख़याल होने के ग्रतिरिक्त हमारे पुराने विद्वानों की कीर्त्ति घर के बाहर फैलती है। ये लाभ, देशी भाषाग्रों में उनके लिखने से, कदापि नहीं हो सकते। हमारा उपकार, कोई चाहे जैसे करै, हमको उसके लिए हृदय से कृतज्ञ होना चाहिए। देश में कैान सा ऐसा विद्वान् हुग्रा जिसने इन लोगें के समान हमारी भाषाग्रों की उत्पत्ति; उनके व्याकरण की श्रृङ्खलता; उनकी स्वतन्त्रता सिद्ध कर दी हो। कोरे संस्कृत के पण्डित जी, प्रायः देखा गया है, "भाषा" को नितान्त ग्रपभ्रष्ट, कुछ फ़ारसी शब्दों की मिलावट से बनी हुई ग्रैार बिना व्याकरण की, मानते हुए, "भाखा" का नाम तक तुच्छाति-तुच्छ मानते हैं। कोई कैसी भी ग्रच्छी चीज़ भाषा में क्यों न हो, पर वह उनके ग्रनुसार है तो "भाखा" ही! इसीसे गो॰ तुलसीदास जी को भी रामायण के शुरू में ग्रपने "भाषा-भणित" को 'भदेस' कहते हुए ऐसे लोगें के प्रति इतना लिखना पड़ा। सो ऐसी पद-दलित ग्रैार तुच्छीकृत भाषाग्रों को इन पुण्य-पुरुषों ने स्वतन्त्रता दी है।

डाकृर साहब ग्रैार हिन्दी।

यद्यपि डाकृर साहब ग्रनेक देशी भाषाग्रों के पण्डित हैं, पर जितना प्रेम उनको हमारी हिन्दी से है उतना ग्रैार किसीसे नहीं। हिन्दी के ग्रध्ययन में ग्राप बहुत सुख पाते हैं। गत ३० वर्ष से ये हमारी भाषा का ग्रध्ययन करते चले ग्राते हैं। ग्रैार उसको, विचारों के प्रगट करने के लिए, संसार की वर्त्तमान सुपूर्ण भाषाग्रों में गिनते हैं। शुद्ध ठेठ हिन्दी को ग्राप एक महती भाषा समझते हैं। ग्रपनी इस प्यारी भाषा में व्यर्थ ही संस्कृत शब्दों को भर कर—जैसा कि इस समय वे काशी में प्रचलित बताते हैं—उसे बिगाड़ते देख डाकृर साहब को बहुत दुःख होता है। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के ग्रनावश्यक प्रयोग को ही साहब ग्रनुचित बताते हैं। वे 'ग्रवसर-कथित' संस्कृतमिश्रित हिन्दी को ख़राब नहीं कहते। जैसे श्रीतुलसीदास ने जहां तक हो सका ठेठ ही से काम लिया; बार बार ग्रैार ग्रधिकतर मीठी, बे-मिलावट की ही, हिन्दी का उन्होंने व्यवहार किया; पर संस्कृत-मिली भी उनकी वाणी ग्रवसर-कथित होने के कारण ठीक जचती है।

हिन्दी-ग्रन्थ-कार।

हमने डाकृर साहब से पूछा कि ग्रापके मतानुसार हिन्दी का सबसे बड़ा ग्रन्थकार कैान है। इस पर डाकृर साहब ने उत्तर दिया कि बिना ग्रागा-पीछा के कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान की सब भाषाग्रों में सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थकार तुलसीदास ही हुए। विलायतवालों में गोस्वामीजी की बहुत कम चर्चा है, इसलिए वहां उनकी लिखावट पर प्रेम उपजाने को साहब ने रायल एशियाटिक सोसाइटी सभा में एक बार एक लेख सुनाया ग्रैार उसे छपवाया भी है। डाकृर साहब ने गोस्वामीजी के रामायण को बहुत ठीक, मध्यदेशवालों का बाइबिल कहा है। गुणग्राही ग्रियर्सन साहब ने विनयपत्रिका के एक पद का ग्रपने लेख में ग्रनुवाद देकर लिखा है कि

यह ईसाई धर्म की प्रार्थना-पुस्तक का एक अंश हो सकता है। उन्होंने लिखा है कि तुलसीदासजी की कविता का नमूना किसी उदाहरण द्वारा दिखलाना, एक ग्लास पानी लेकर समुद्र का नमूना दिखलाने के बराबर होगा।* ऐसे विद्यानिधानों से अपने मान्य कवि की ऐसी उचित प्रशंसा सुन कर हमारा शरीर पुलकित होता है। बिहारीलाल और सूरदास की कविता के भी हमारे चरित-नायक बड़े प्रेमी हैं। लल्लूजी की कुछ गद्यलिखावट भी आप बहुत पसंद करते हैं; पर लल्लूजी के बाद, साहब कहते हैं कि, बहुत कम शुद्ध हिन्दी लिखने-वाले हुए। डाकृर साहब की अभिलाषा रहती है कि हरि-औध जी† के "ठेठ हिन्दी का ठाठ" नामक पुस्तक की लेखशैली के अनुसार हिन्दी और लोग भी लिखें। वैसी भाषा लिखने से आप लाभ की आशा रखते हैं। डाकृर साहब की सम्मति यहां पर इसलिए लिख दी गई है कि वे हिन्दीवालों से प्रमाण से माने जाते हैं। अतः वे लोग अपने हितेच्छुक की इच्छा पूरी करने की चेष्टा करें।

चरित्र, स्वभाव आदि।

हमारे चरितनायक पर गवर्नमेण्ट का बहुत विश्वास था। सर्कार ने उनको सी० आई० ई० (भारत साम्राज्य के सहायक) की उपाधि भी दी है। आपकी सर्कारी कर्मचारिता में यद्यपि कोई विशेष घटना न हुई, पर जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, उन्होंने ऐसा काम किया है जिससे चिरकाल तक भारत साम्राज्य का हित साधन होगा। भारतवर्ष में आपके अनेक सुहृद् हुए जिनमें बहुत से वर्त्तमान हैं और बहुत से इस संसार को छोड़ गये। ऐसे लोगों में कुछ की चर्चा ऊपर की गई है। टिकारी के परलोक-वासी राजा रणबहादुरसिंह से भी डा० साहब का बहुत बन्धुत्व था। साहब का कथन है कि इस संसार में उनके सब मित्र हैं प्रायः सभी हिन्दुस्तान ही में रहते हैं या रहे हैं। शासन में, यहां वालों के प्रति सर्वदा, आप, मित्र के समान व्यवहार करते थे। और सन्मित्र के समान, जब कभी उन लोगों में कोई अनुचित बात देखते तो उसके लिए, बे-हिचके उनको डाटते भी थे। आपका स्वभाव ऐसा सरल है कि विरले ही हाकिमों में वैसा देखने में आता है। पण्डित अम्बिकादत्त लिखते हैं "ग्रियर्सन साहब में एक अपूर्व गुण यह है कि इनसे जो ही भारतवर्षीय पुरुष मिलता है वही प्रसन्न हो जाता है। प्रायः उच्च पद वालों में अपने उच्च पद की ठसक ऐसी हो जाती है कि कोई कैसा ही प्रतिष्ठित विद्वान् उनसे मिलना चाहे तो उससे भरसक मिलते नहीं और मिलें तो अपने पद की ठसक भी लगाए रहते हैं। यह बात इनमें नहीं है। इनसे मिलने पर यही विदित होता है कि जैसे किसी परममित्र से भेट भई हो। हम लोगों से इनसे चिरपरिचय है और इनका स्नेह देखके आश्चर्य होता है।"

ठीक है सज्जनों का ऐसा ही स्वभाव होता है—

"घर्मार्त्तं न तथा सुशीतलजलं स्नानं न मुक्तावलि-
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम्।
प्रीत्यै सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसि
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमंत्रोपमम्॥"

ईश्वर इनकी प्रतिष्ठा और आयुको बढ़ावै; और हिन्दी पर साहब की वही दया बनी रहै।

काशीप्रसाद।

---

* "हिन्दुस्तान के आधुनिक देशी भाषा साहित्य" में सब कवियों से अधिक तुलसीदास ही पर डाक्टर साहब ने लिखा है। सूरदास से गोसाईं जी को आपने बड़ा माना है। वरन् भारतवर्ष भर के मध्य कालीन काव्याकाश में आपने उनको महत्तम नक्षत्र कहा है। साहब ने धार्मिक दृष्टि से इनके उपदेशों को बहुत पवित्र, विशुद्ध, और अलौकिक बताया है; इनकी उपदिष्ट सच्चरित्रता और कर्त्तव्य परायणता की शिक्षा की बड़ी प्रशंसा की है। लिखा है कि ईसाई धर्म के बहुत से भजन ऐसे हैं जो इस बड़े कवि के लिखे वाक्यों के शब्दशः अनुवाद हो सकते हैं। काव्य दृष्टि से भी, आपने उनकी बड़ी श्लाघ्य आलोचना की है; वर्णन को बहुत ओजस्वी और वर्णित पात्रों को, अङ्गरेज़ी साहित्य के चित्रित पात्रों के बराबर विशद बताया है; उनकी उपमाओं की बहुत सराहना की है।

† हमारे माननीय मित्र, प्रसिद्ध ठेठ हिन्दी के लेखक, पण्डित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय; आज़मगढ़ वाले।

ग्रन्थकारों से विनय ।

[१]

हे ग्रन्थकार, आगार गुणों के, ज्ञाता,
अति-रुचिर-मनोरम-गद्य-पद्य-निर्म्माता ।
क्षण भर के लिए समेट काम निज सारा,
सुनिए यह इतना विनय विनीत हमारा ॥

[२]

भाषा है रमणी-रत्न महा-सुखकारी ;
भूषण हैं उसके ग्रन्थ लोक-उपकारी ।
उनको लिख उसकी तृप्ति भली विधि कीजै ;
अति-विमल-सुयश की राशि क्यों न ले लीजै ?

[३]

सत्काव्य, तथा इतिहास, और विज्ञान,
सत्पुरुषों के भी चरित विचित्र-विधान ;
लिखिए हे लेखन-कला-कुशलतावान !
इसमें ही है सब भाँति देश-कल्याण ॥

[४]

वर रत्न, कनक कमनीय, कान्ति के वर्द्धक
इस भूषण-रचना-हेत नहीं आवश्यक ।
इस कारण देश विदेश नहीं जाना है ;
शारीरिक श्रम भी नहीं बहुत पाना है ॥

[५]

सुविचार-राशि हैं रत्न रुचिरताधारी ;
हैं सुन्दर वर्ण सुवर्ण ; कर्ण-सुखकारी ।
घर ही में बैठ विचार प्रकट करना है ;
पुस्तक के पृष्ठ सहर्ष वहीं भरना है ॥

[६]

जो वस्तु और की बिना कहे लेता है ;
सब कोई उसको "चोर" सदा कहता है ।
औरों के चारु विचार तथापि मनोहर
ले लेने में कुछ दोष नहीं, हे बुध-वर !

[७]

इंग्लिश का ग्रन्थ-समूह बहुत भारी है ;
अति-विस्तृत-जलधि-समान देहधारी है ।
संस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी है ;
उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है ॥

[८]

इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजै ;
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेम-युत कीजै ।
वह माता-सम सब भाँति स्नेह-अधिकारी ;
इतनी ही विनती आज विनम्र हमारी ॥

[९]

माता है जैसी पूज्य सुनो हे भाई !
भाषा है उसी प्रकार महा-मुद-दायी ।
माता से पूज्य विशेष देश-भाषा है ;
मिथ्या यह हमने वचन नहीं भाखा है ॥

[१०]

माता से जग के बीच जन्म मिलता है ;
भाषा से सब व्यवहार सदा चलता है ।
इससे ही उसकी कीर्ति विज्ञ गाते हैं ;
तत्सेवा कर आनन्द अमित पाते हैं ॥

[११]

इसलिए स्वभाषा-भक्ति, देश-हितकारी !
कर, भली भाँति, हूजिए पुण्य-अधिकारी ।
रचिए गुण-गौरव-पूर्ण-ग्रन्थ-गण सारा ;
बस, यही आप से विनय विनीत हमारा ॥

मित्रता ।

[अङ्गरेज़ी कवि शेक्सपियर की FRIENDSHIP
नामक कविता का भावार्थ]

[१]

Every one that flatters thee
Is no friend in misery.
Words are easy, like the wind ;
Faithful friend 'tis hard to find.
Every man will be thy friend,
Whilst thou hast wherewith to spend ;
But if store of coin be scant,
No man will supply thy want.

मित्र नहीं दुख में है वह, जो
झूठ प्रशंसा करता है।
मीठे वचन सुगम है सुनना
सत्य मित्र कम मिलता है।
साथी तेरे सभी बनैंगे
जब तक रुपया है भरपूर।
जब अभाव उसका होगा, तब
वही रहैंगे तुझसे दूर॥

[२]

If a man be prodigal,
Bountiful they will him call;
If he be inclined to vice,
Quickly they will him entice.
But if fortune once do frown,
Then farewell his great renown;
They that frowned on him before
Use his company no more.

✻

जो मनुष्य बहु व्यय करता है
उसको कहते लोग उदार।
जो प्रवृत्त होता कुकर्म में
देते उसको .खूब उभार।
यदि विधि वाम कभी हो जाता,
जाता उसका सारा नाम।
पास कभी आता नहिँ उसके
पहले जो था बना .गुलाम॥

[३]

He that is thy friend indeed,
He will help thee in thy need:
If thou sorrow, he will weep;
If thou wake, he cannot sleep;
Thus of every grief in heart
He, with thee, doth bear a part.
These are certain signs to know
Faithful friend from flattering foe.

✻

सच्चा मित्र वही है तेरा
जो विपत्ति में आता काम।
तुझको दुखी देख वह रोता;
जगते, सोता एक न याम।
इसी तरह सब दुःख बाँटने
में वह रखता अपना ध्यान।
झूठे-सच्चे मित्रों को इन
चिन्हों से करिये पहचान॥

कालीशङ्कर व्यास।

द्वारका-वर्णन।

[१]

पुरी द्वारका परम सोहाई।
को जग जासु नाहिँ मन भाई?
बन उपबन सर सरित सुहाये।
कुसुमित जल थल अति मन भाये॥

[२]

अरुण पीत सित नील वरण के।
कञ्ज-पुञ्ज-गुञ्जार अलिन के॥
कुसुम कमल-दल सुन्दर भारे।
मनहु पञ्चशर-शर अनियारे॥

[३]

जल देविन के सुत अति बारे।
रविहिँ लखत जनु वदन उघारे॥
प्रात जलज-छबि लखि सकुचायो।
शशी हँसी-भय वदन दुरायो॥

[४]

षटपद-रव-पूरित चहुं छाईं।
मानहुं किन्नर बीन बजाईं॥
तरुण-मराल-वृन्द-बर जोरिन।
चुगत फिरत मुक्तन चहुं ओरिन॥

[५]

चकवा चकई जुगल छबि, रजनी-बिरह विहाय।
बिहरत सर सरितन फिरत, मोद न हृदय समाय॥

[६]

जल कुक्कुट काकोल बक, टिटही टेर सुनाय।
सुन्दर सारस जोरियाँ, बिहरत दृग सुखदाय॥

[७]

द्विजगन कूजनि बिबिध बिधाना।
निद्र करहिं अपसरगन गाना॥
नव कुसुमित सुबेलि सुखदानी।
तरुन तरुवरन हिय लपटानी॥

[८]

मनु कोमल कर नारि नवेली।
पिय गल मेलि करहिं रस केली॥
बाग़ गुलाब प्रफुल्लित ऐसे।
प्रौढ़ा दृग मदमाते जैसे॥

[९]

नैन गुलाब कली सों लागे।
बिन पराग मधु मद अनुरागे॥
खिली चमेली दृगन लुभाई।
बिबुध भामिनी मनु मुसक्याई॥

[१०]

कुन्द-कली-छबि-छटा सुहाई।
रति की दशन-पंक्ति सकुचाई॥
ठाढ़े कदली-द्रुम यहि भाँती।
जनु सुरभवन अपसरा पाँती॥

[११]

भरत बीन लालन की पाँती।
मंजु मंजरिन अतिहि सुहाती॥
चढि स्यन्दन नभ-पथ थहरावहिँ।
बिबिध विहग के वचन सुनावहिँ॥

[१२]

थिरकि थिरकि श्यामा मतवारी।
महा मृदुल वर बैन उचारी॥
चिरियाँ चुहचुहाँय चहुं ओरा।
मञ्जु माधुरी शोर न थोरा॥

[१३]

थोक कपोतन के सुभग, भरे काम रस भार।
रस-विलास बहु बिध करत, तिय मुखमें मुख डार॥

[१४]

झुकि झूलत निज झोंक में, बया बई के सङ्ग।
शुक पिक सुन्दर शारिका, बिहरत भरे उमङ्ग॥

[१५]

भूमि स्वर्ग से अधिक सुहानी।
पानी होत सुधा लखि पानी॥
पवन परस अद्भुत सुखदाई।
त्रिबिध ताप लागतहि सिराई॥

[१६]

अगनित मन्दिर सुन्दर राजे।
स्फटिक मणी के शशि सम भ्राजे॥
बिबिध पन्थ बीथिन श्रृङ्गारा।
सभा अनेकन सुभग बजारा॥

[१७]

रचना रुचिर विचित्र अनोखी।
बहु बिध एक एक सन चोखी॥
चारु चौहटे सुन्दर शाला।
नभ-चुम्बित सुरसदन विशाला॥

[१८]

घण्टा घोर झाँझ झनकारा।
शङ्ख सरस धुनि सुभग नगारा॥
जहँ तहँ वेद-घोष चहुं घाँई।
शोर पठनगृह बटु-समुदाई॥

[१९]

नगर मध्य प्रासाद विशाला।
उन्नत शिखर रुचिर शशि-शाला॥
तापर गरुड़ ध्वजा जरतारी।
झलकत अति विचित्र मनहारी॥

[२०]

भवन भामिनिन के चहुं ओरा।
सोलह सहस सुभग चित चोरा॥
द्वारे द्वारपाल समुदाई।
ठाढ़े सज धज बिशद बनाई॥

[२१]

घूमत सायुध सज्य बहु, बीर द्वार दोउ ओर।
जहँ तहँ पहरन पर खरे, भारी भट बरजोर॥

[२२]

सालङ्कृत गज बाजि रथ, जुरे समूह महान।
सुन्दर शिविकन पालकिन, भरे भवन मैदान॥

(श्रीमन्त प्रिन्स) बलवन्तराव सिन्धिया,
[ग्वालियर]

शिक्षाशतक ।

[गत अङ्क के आगे]

(७७)

जो सच्चे सेवक हैं शिष्ट ।
कभी न करते काज अनिष्ट ॥
मालिक के हित अपनी जान ।
सदा समझते तृण-परिमाण ॥

(७८)

सेवक की शुभ सेवा जान ।
रीझ पचाते जो धनवान ॥
वह अकृतज्ञ अज्ञ का दास ।
कभी न रक्खै सुख की आस ॥

(७९)

प्रभु से बढ़, अपना सन्मान ।
पा, मन में लाकर अभिमान
आज्ञा सुन, बैठें, गह मौन ।
ऐसे सेवक से सुख कौन ?

(८०)

प्रभु से कह, मुँह मीठी बात ।
झूठी भक्ति दिखा, दिन रात ॥
अपनी झोली ही से काम ।
वे ही सेवक नमकहराम ॥

(८१)

जो स्वामी सेवक-आधीन ।
हो, दब के रहते मतिहीन ॥
सो अपनी प्रभुता को व्यर्थ ।
खो कर हो जाते असमर्थ ॥

(८२)

पहले किया तपस्या-योग ।
तब तुम ने पाया धन-भोग ॥
इसे सुमिर, करना सो काम ।
जिस से फिर पाओ सुख-धाम ॥

(८३)

संचित धन की हैं गति तीन ।
दान, भोग, औ होना क्षीण ॥
जहाँ न दान और उपभोग ।
वहाँ वही अन्तिम-गति-योग ॥

(८४)

धर्म-काज में जो मतिमान ।
यथा शक्ति देते हैं दान ॥
रखते हृदय सदा अविकार ।
वास्तव में हैं वही उदार ॥

(८५)

श्रद्धा सहित रहित अभिमान ।
जो करते धर्मानुष्ठान ॥
वे आदर्श पुरुष धर्मिष्ठ ।
पाते हैं सुख सदा घनिष्ठ ॥

(८६)

ब्रह्मचर्य्य व्रत नियमाधीन ।
होकर पहले बनो प्रवीण ॥
तब गृहस्थ का गह कर धर्म ।
करो शास्त्र-सम्मत सब कर्म ॥

(८७)

गेहोचित सुख-भोग-विलास ।
करके फिर हो जाव उदास ॥
बरतो वानप्रस्थाचार ।
तज दो, ममता-जनित-विकार ॥

(८८)

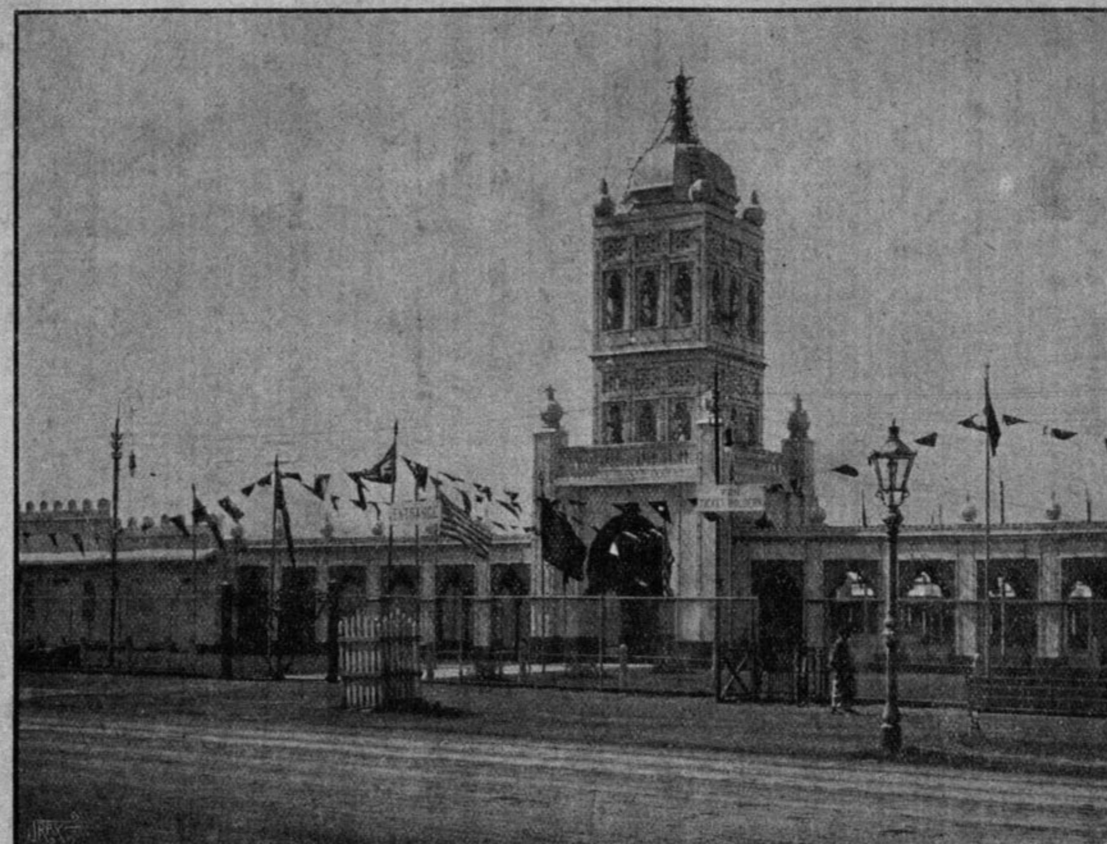
जिसे समझते हो निज अङ्ग ।
सो भी नहीं जायगा संग ॥
निज-कृत-कर्म्म साथ ले हाय ।
चल दोगे, तज यह भी काय ॥

(८९)

धर्म एक रक्षक सब ठौर ।
जिस से बढ़ बान्धव नहिँ और ॥
उसे बिसार, अज्ञ दुख झेल, ।
करते पाप-शत्रु से मेल ॥

(९०)

धूर्तराज पातक है एक ।
दिखला करके विषय अनेक ॥



कांग्रेस के मण्डप का दृश्य

National Library,
Calcutta-27.

मोद चखा कर क्षणिक सयत्न ।
ठग लेता है जीवन-रत्न ॥

(९१)

रागद्वेष असत-आलाप ।
बाधक जान, इन्हें तज, आप ॥
भली भाँति कर अन्तःशुद्धि ।
होवैँ मुक्तिपथिक थिर-बुद्धि ॥

(९२)

लैाकिक सुख सब स्वप्न समान ।
मन में निश्चय मिथ्या मान ॥
ज्ञानी सब से होकर त्यक्त ।
कभी न होते मायासक्त ॥

(९३)

जिन्हें नित्य सुख की है चाह ।
करते बुद्धि-सरित-अवगाह ॥
वे अनित्य-सुख-भोग-निमित्त ।
कभी न होते लोलुप-चित्त ॥

(९४)

बन्धन-मूलक कर्म्म सकाम ।
जिसका भला न है परिणाम ॥
जो चाहो सुख अभय ललाम ।
तो तुम करो कर्म निष्काम ॥

(९५)

होगा नष्ट तभी अभिमान ।
उपजेगा जब आत्मज्ञान ॥
चीन्होगे अपने को आप ।
सुख पाओगे हो निष्पाप ॥

(९६)

देह और इन्द्रिय से भिन्न ।
आत्मा चेतन नित्य अखिन्न ॥
मन से अपर पूर्ण-सुख-सार ।
ज्ञानगम्य निगुर्ण अविकार ॥

(९७)

ब्रह्म जीव हैँ एक अभेद ।
केवल मायैापाधिक भेद ॥
भेद-बुद्धि तज, आत्मज्ञान
साधन कर, होओ विद्वान ॥

(९८)

भगवद्भक्ति बिना सो ज्ञान ।
सुलभ नहीँ यह निश्चय जान ॥
हरि-पद-प्रेम-लीन हो, आप
समझैँ करतल-मुक्ति दुराप ॥

(९९)

मायावश प्राणी सब भूल,
पाते जन्म मरण भवशूल ॥
जो हरिपद-आश्रित दिन रैन ।
माया तिन्हें सताती है न ॥

(१००)

कर न सको जो साधन और ।
प्रभु को लख, व्यापक सब ठैार ॥
बच, कुवृत्ति से सभी प्रकार ।
प्रभुपद भज, जीतो संसार ॥

(१०१)

जन-सीदन की शिक्षा मान,
जो उस पर रक्खेगा ध्यान ॥
सो प्रभु कृपापात्र हो नित्य ।
सभी भाँति होगा कृतकृत्य ॥

जनार्दन-झा ।

अनुमोदन का अन्त ।

कोई पांच वर्ष हुए, नागरीप्रचारिणी सभा के, काशी-निवासी, दो प्रधान सभ्य इलाहाबाद किसी काम से गये। काम इण्डियन प्रेस में था। वहां पर, बातों बातों में, हिन्दी-साहित्य की चर्चा छिड़ी। इस पर प्रेस के मालिक ने उन सज्जनों से हिन्दी की अवनति पर खेद प्रकट किया और कहा कि बँगला मासिक पुस्तक "प्रदीप" की ऐसी यदि हिन्दी में भी कोई

पत्रिका होती तो बहुत उपकार होता। यह सुन कर उन सज्जनों ने कहा कि यदि ऐसी पत्रिका के निकालने की ज़िम्मेदारी कोई अपने ऊपर ले तो वे उसके सम्पादन का प्रबन्ध कर दें। प्रेस के मालिक ने उनसे कहा कि "हमारी मातृ-भाषा बँगला है; पर हम युक्तप्रदेश में रहते हैं; इसलिए यहां की भाषा, हिन्दी, की भी उन्नति करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। अतएव यदि हिन्दी-भाषा-भाषी कोई सज्जन इस काम को अपने ऊपर नहीं लेता तो हमी ले लेंगे; आप सम्पादन का प्रबन्ध कीजिए"। तब उन सज्जनों ने, काशी में, एक "सम्पादक-समिति" बनाकर, सरस्वती को निकाला और इण्डियन प्रेस ने उसे छापने और प्रकाशित करने का ख़र्च अपने ऊपर लिया।

एक वर्ष बाद "सम्पादक-समिति" तोड़ दी गई और सरस्वती का सम्पादकत्व सभा के मन्त्री को मिला। यह दूसरे प्रकार का प्रबन्ध भी दोही वर्ष तक चला। तीसरे वर्ष से यह काम हमको अपने ऊपर लेना पड़ा। परवशता के कारण उस समय हमारे पास बेहद काम था। परन्तु प्रेस के कहने और सरस्वती का सच्चा हाल जानने पर हमने इस काम को स्वीकार करना ही उचित समझा।

जब इस बात की ख़बर सभा को दी गई तब उसने सरस्वती के सम्बन्ध में इण्डियन प्रेस से कई शर्तें करनी चाहीं। तीन वर्ष के बाद अपना "अनुमोदन" बनाये रखने के लिए सभा ने इन शर्तों की ज़रूरत समझी। सभा से प्रेस ने प्रार्थना की कि हिन्दी की उन्नति के ही लिए सभा स्थापित हुई है। इससे "सरस्वती" को ही नहीं, किन्तु, जितने समाचारपत्रों और जितनी पुस्तकों का उद्देश्य हिन्दी की उन्नति करना है, सभा को चाहिए, उन सबको भी वह अपना अनुमोदन दे। न सभा लिखै; न सभा प्रकाशित करै; न सभा को कुछ देनाहीं पड़ै, फिर अनुमोदन के लिए शर्तें क्यों? ख़ैर, कुछ लिखा पढ़ी के बाद सभा ने कृपापूर्वक शर्तों की बात वहीं तक रक्खी; आगे न बढ़ने दी।

तब से डेढ़ दो वर्ष तक कोई विशेष बात नहीं हुई। गत अक्टोबर की सरस्वती में हमने "खोज की रिपोर्ट" की आलोचना प्रकाशित की। उसका जो परिणाम हुआ वह सरस्वती के पाठकों को मालूमही है। हमारे उत्तर पर सभाने क्या किया सो तो हमें विदित नहीं। पर, इस बीच में, एक और ही बात होगई जिसने सभा और सरस्वती के अनुमोदन-रूपी सम्बन्ध-सूत्रही को तोड़ डाला।

सभा की आज्ञा शिरोधार्य्य करके १९०३ ई० में "देशव्यापक भाषा" नामक एक लेख हमने लिखा। वह सरस्वती में छप भी चुका है। इस लेख को पुस्तकाकार छपाने के लिए सभा ने लिखाया था। परन्तु जब एक वर्ष तक वह पुस्तकाकार न छपा तब हमने सभा से पूर्व-प्रतिज्ञा के भङ्ग करने का कारण पूछा। इस पर कुछ लिखा पढ़ी हुई। सभा के उत्तरों से हमको सन्तोष न हुआ। इसलिए, इस विषय पर, हमने एक छोटा सा लेख, प्रकाशित करने के इरादे से, लिखा। इस लेख के अन्तमें हमने एक प्रस्ताव भी किया। वह यह कि सभा बाहरी सभासदों को भी अपनी कार्य्य-कारिणी कमिटी में रक्खे। क्योंकि सभा के ५७६ सभासदों में से बाहर के ४८८ और बनारस के सिर्फ़ १२८ हैं। पर, आज तक, स्थानीय सभासदों में से ही कार्य-कारिणी कमिटी के मेम्बर चुने गये हैं। इस लेखको हमने सभा के पास देखने को भेज दिया; क्योंकि सभा ने कई बार यह इच्छा प्रकट की थी कि उसके सम्बन्ध के लेख, देखने के लिए, पहले उसके पास भेजे जाया करें। इस लेख को पढ़ कर सभा ने न उसका खण्डन किया; न हमसे कुछ पूँछा; यहाँ तक कि उसे हमको लौटाया तक नहीं! उसे उसने इण्डियन प्रेस को भेजा और लिखा कि—"सभा सम्बन्ध में जैसे प्रश्नों पर सरस्वती में लेख लिखे जा रहे हैं उनका निश्चय सभा में होना चाहिए"। इसके आगे उसने प्रेस के स्वामी से यह कहा कि या तो वे ऐसे "आन्दोलन" को रोकें या सरस्वती से सभा का नाम दूर कर दें।

यहां पर हम सभा से यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि वह ज़रा हमसे पहले पूँछ तो लेती कि यह लेख हमने सरस्वती में छापने के इरादे से लिखा था या ग्रैर कहीं। क्योंकि यदि हम उसे अन्यत्र प्रकाशित करते तो सभा को उसके प्रकाशन को रोकने की ज़रूरत ही न रह जाती। ग्रस्तु।

इण्डियन प्रेस ने सभा की चिट्ठी का खब अच्छी तरह से विचार करके जो उत्तर दिया उसकी नक़ल हम नीचे देते हैं—

"इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १३–१–०५

"श्रीयुत मन्त्री महाशय, नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी—

"महाशय, ग्रापका पत्र नम्बरी ११३०-१२, ता० २२ जनवरी, १९०५ का मिला।

"सरस्वती के सम्पादक का मत है कि सभा-सम्बन्धी कार्यों की ग्रालोचना सर्वसाधारण की जानकारी से हो, ग्रैर ग्रापकी इच्छा है कि सभा की कारग्वाई सर्वसाधारण पर विदित न हो। ग्रापकी ग्रैर सरस्वती के सम्पादक की राय में हमको इतनाही भेद जान पड़ता है। इस भेद से हमको बड़ा दुःख हुग्रा।

"सरस्वती के द्वारा हम ग्राप लोगों में भेद करवाना नहीं चाहते। सभा के बहुत से मेम्बरों को यह बात ग्रच्छी तरह मालूम है कि सरस्वती के प्रकाशन से हमारा उद्देश्य हिन्दी साहित्य की कुछ उन्नति करने का है; उससे धनसम्बन्धी लाभ उठाने की ग्राशा हमको कभी नहीं है। जब से वर्त्तमान सम्पादक के हाथ में सरस्वती गई है, तब से लोग उसे ग्रधिक पसन्द करने लगे हैं। क्योंकि ग्रब दिनोदिन उसकी ग्राहकसंख्या बढ़ती जाती है। हम समझते हैं कि ग्रब बहुत शीघ्रही सरस्वती का व्यय उसीके ग्राय से चल जायगा। इस ग्रवस्था में हम यह उचित नहीं समझते कि हम सम्पादक की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करें; क्योंकि ऐसा करने से सम्पादक से ग्रैर हमसे भेद होजाने का भय है। ग्रैर हमको पूर्ण विश्वास है कि यदि हम उनकी स्वाधीनता छीन लें तो वे सरस्वती का सम्पादन ही छोड़ देंगे। इसीलिए हम सरस्वती के वर्त्तमान प्रबन्ध में गड़बड़ डालना उचित नहीं समझते।

"परन्तु, यदि हम सम्पादक की कारग्वाई को न रोकें तो ग्राप चाहते हैं कि सरस्वती ग्रैर सभा का "बन्धन" तोड़ दिया जाय। सरस्वती का जन्म सभा की सहायता से हुग्रा था। इसीसे हमने सरस्वती के कवर पर ग्रब तक सभा का नाम रहने दिया था। परन्तु ग्रब सभा इस बात को नहीं चाहती, इसलिये हमने मैनेजर को कह दिया है कि सभा का नाम इस मास (जनवरी) की संख्या से, जो ग्राज कल में प्रकाशित होगी, ग्रब ग्रैर न छापा जाय।

"हिन्दी साहित्य में ग्रापस का झगड़ा बड़ा हानिकारक होगा। इसलिये ग्राप लोगों में यह मतभेद देखकर हमको बहुत दुःख होता है। परन्तु इसमें हमारा कुछ बस नहीं।

"भवदीय
C. M. Ghosh
प्रोप्राइटर, इण्डियन प्रेस।"

सरस्वती के ग्रावरणपृष्ठ से, सभा के ग्रनुमोदन की सूचक सतर, जनवरी से, उठाकर सभा की ग्राज्ञा पालन कर दी गई। सभा के कार्यकर्ता सब समझदार ग्रैर योग्य हैं। वे जो कुछ करेंगे समझ बूझ कर ही करेंगे। परन्तु हमारी मन्दबुद्धि में यह ग्राता है कि जितने सर्व-साधारण समाज हैं उनको ग्रपनी कारग्वाई की ग्रालोचना रोकने का कभी यत्न न करना चाहिए। ग्रङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट विदेशी है। पर उसने भी ग्रपने कामों की ग्रालोचना करने का द्वार खोल रक्खा है। खुले ख़ज़ाने, लोग, वाइसराय ग्रैर प्राइम मिनिस्टर तक के कामों का खण्डन मण्डन करते हैं। इससे गवर्नमेण्ट की उदारता ग्रैर न्यायनिष्ठा ज़ाहिर होती है। यदि गवर्नमेण्ट यह क़ानून बना दे कि जिसे जो कुछ कहना हो

वह कलेक्टर, कमिश्नर या किसी प्रान्तिक गवर्नर के पास अर्ज़ी लेकर हाज़िर हो, तो प्रजा के असन्तोष और कष्ट का ठिकाना न रहे। प्रबन्ध में गड़बड़ पड़ जाय। पर इस तरह का क़ानून गवर्नमेण्ट ने आज तक नहीं बनाया; बनाने का विचार तक नहीं किया। गवर्नमेण्ट के कामों को जो आलोचनायें होती हैं उनमें से जो तुच्छ समझी जाती हैं वे उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती हैं; जिनके उत्तर की आवश्यकता होती है उनका यथा समय और यथानियम उत्तर दिया जाता है; और यदि किसी आलोचना में कोई बात ग्रहण करने के योग्य होती है तो वह ग्रहण भी करली जाती है। यद्यपि सरस्वती से सभा का अनुमोदन-स्वरूप सम्बन्ध समाप्त हो चुका, तथापि हमारी अब भी यही आन्तरिक इच्छा है कि वह अपने कार्य्यों की आलोचनाओं के विषय में उदार भाव धारण करे, क्योंकि जो अपने विषय की चर्चा को रोकने की चेष्टा करता है वह मानो उस चर्चा को और भी अधिक उत्तेजित करता है। और, इस समय, इतने समाचार पत्र और मासिक पुस्तकें जारी हैं कि इस प्रकार की चेष्टा करना ही व्यर्थ है।

सभा हिन्दी जाननेवालों के आदर की चीज़ है। उसके "अनुमोदन" वाली सतर को बहुत कुछ समझ कर ही सरस्वती ने सादर सिर पर रक्खा था। पर वह सभा की चीज़ थी। उसे उसने ले लिया। परन्तु सरस्वती के प्रकाशन में मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश, मध्यभारत, राजपूताना, बिहार और पञ्जाब के सिवा बंगाल और मदरास प्रान्तों तक के सज्जनों का जो अनुमोदन है वह उसके हर पृष्ठ में, अलक्ष्य रूपसे, अभी तक बना हुआ है। और जब तक सरस्वती में वह सामग्री है जिसकी प्रेरणा से उसे यह विशेष व्यापक और सर्वथा अप्रार्थित अनुमोदन मिला है, तब तक उसके छिन जाने का डर भी नहीं है। अपनी विपन्न मातृ-भाषा पर इन अनुमोदन-कर्ताओं की जो प्रीति है, ईश्वर, उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाय, जिसमें, उस वृद्धि के साथ ही उनके हृदय में सरस्वती-सम्बन्धिनी प्रीति का उद्रेक भी बढ़ता जाय।

जब दो मित्र एक दूसरे से अलग होते हैं तब कई प्रकार के सात्विक भावों का उदय हो आता है। अनुमोदन के रूप में सभा और सरस्वती का पाँच वर्ष तक सम्बन्ध रहा। इतने दिनों बाद गत मास में उसकी समाप्ति हुई। हम नहीं कह सकते कि, इस कारण, सभा के मन में कोई भावनायें हुईं या नहीं; और जो हुईं तो कैसी हुईं। पर सरस्वती के मन में ठीक उसी तरह की भावनायें हुई हैं जिनका वर्णन अनीस कवि ने अपने एक पद्य में किया है। उसी पद्य को नीचे प्रकाशित करके, आशीर्वाद देती हुई, काशी की नागरीप्रचारिणी सभा से सरस्वती प्रेमपुरःसर बिदा होती है—

सुनिये **विटप** वर **पुहुप** तिहारे हम ;
राखिहौ हमैं जो, शोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहौ कदाचित तो बिलगु न मानैं कछू ;
जहां जहां जैहैं तहां दूनो जस छावैंगे॥
सुरनि चढ़ैंगे, नरसिरनि चढ़ैंगे सदा,
सुकवि अनीस हाट बाटनि बिकावैंगे।
देस में रहैंगे, परदेस में रहैंगे काहू,
भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावैंगे॥

बम्बई में "भारत-महिला-परिषद्"

देश की उन्नति दो प्रकार के सुधारों पर अवलम्बित है। एक राजनैतिक सुधार; दूसरे सामाजिक। जब तक समाज की दशा उन्नत नहीं होती तब तक राजनैतिक सुधार की सम्भावना नहीं हो सकती। क्योंकि समाज भिन्न भिन्न लोगों का समूह है। यदि वे अशिक्षित हैं, तो समाज स्वस्थ नहीं कही जा सकती।

मुझको खेद के साथ लिखना पड़ता है कि बम्बई की और इस प्रान्त की स्त्रियों में आकाशपाताल का

ग्रन्तर है। इसका कारण केवल शिक्षा का ग्रभाव है। क्योंकि बम्बई प्रान्त भी भारतवर्ष का ही एक भाग है। ग्रैार वहां की स्त्रियां इस तरफ़ की स्त्रियों से, बुद्धि में, स्वभावतः, किसी भांति बढ़ कर नहीं है। खेद का विषय है कि हमारे विद्वान् भाई कानफ्रेंस ग्रैार कांग्रेस के चबूतरे पर चढ़कर बड़े बड़े व्याख्यान देते हैं। परन्तु, वास्तव में, उनके घरों में ग्रन्धकार छाया रहता है। जब हमारा ध्यान इस प्रान्त की स्त्रियों की तरफ़ ग्राकर्षित होता है, तब यह बात सहज ही ध्यान में ग्रा जाती है कि हमारे भाई स्त्री-शिक्षा की तरफ़ कितना उद्योग करते हैं। बम्बई प्रान्त के सज्जन ग्रपनी विद्वत्ता तथा स्वदेशभक्ति के केवल चबूतरे ही पर नहीं दिखाते; किन्तु ग्रपने घर में (जो यथार्थ में सुधार करने का सच्चा चबूतरा है) उसका बर्ताव भी करते हैं। ग्राज, यहां पर, मैं यह दिखाना चाहती हूं कि बम्बई की स्त्रियों ने कितनी उन्नति की है। इसका नमूना मुझे वहां हाल ही में देखने में ग्राया। जो सज्जन, इस दफ़ा, यहां से कांग्रेस के डेलीगेट ग्रथवा दर्शक बनकर बम्बई गये होंगे उन्होंने यह देखा होगा कि सूचीकार्य ग्रैार चित्रकारी में वहां कितनी उन्नति हुई है। ग्रैार किस नियम, किस सुघराई ग्रैार किस योग्यता से वहां वे पदार्थ प्रदर्शनी में रक्खे गये थे जिनका प्रबन्ध श्रीमती मिस पटुक ने किया था। यह सब कुछ तो था ही, परन्तु समाज-सुधार के लिये स्त्रियों ने जो किया उसका सारांश लिखना ही इस लेख का ग्रभिप्राय है। यद्यपि बम्बई में लेडीज़ ग्रसोसिएशन (Ladies' Association) बहुत काल से है ग्रैार वहां की स्त्रियां सामाजिक तथा मानसिक उन्नति के उपाय हमेशा ही सोचा करती हैं; तथापि यह सभा, ग्रर्थात् महिला-परिषद, इस देश की सभी स्त्रियों के लिये थी।

दिनके ग्यारह बजे के पहले ही से स्त्रियों का ग्रागमन ग्रारम्भ हो गया। ग्रैार बारह बजे तक फ़रामजी कावसजी इन्सटिट्यूट में लगभग ७-८ सैा स्त्रियां इकट्ठी हो गईं। उनका स्वागत, द्वार पर, श्रीमती लक्ष्मीबाई चन्दावरकर तथा श्रीमती विद्यागैारी रमणभाई, बी० ए०, ने बड़े ग्रादर से किया। काररवाई बारह बजे ग्रारम्भ हुई। ईश्वर-स्तुतिके कई एक गीत गुजराती तथा मराठी में गाये गये। श्रीमान तैयबजी की कन्याग्रों ने हिन्दुस्तानी में गीत गाया ग्रैार वीणा बजाया। लेडी भालचन्द्र स्वागत कमिटी की ग्रध्यक्ष ग्रैार २१ स्त्रियां सभासद थीं। सबकी तरफ़ से लेडी भालचन्द्र ने ग्रागत स्त्रियों का सत्कार करके सभा का प्रयोजन, थोड़े शब्दों में, वर्णन किया। फिर श्रीमती लक्ष्मीबाई चन्दावरकर तथा मिसेज़ तैयबजी के प्रस्ताव तथा ग्रनुमोदन से श्रीमती रमाबाई रानडे ने महान ग्रानन्दध्वनि के साथ सभापति का ग्रासन ग्रहण किया। तदुपरान्त श्रीमती ने मराठी भाषा में ग्रत्यन्त मधुर स्वर से ग्रपना व्याख्यान ग्रारम्भ किया। उसे ग्रापने बड़ी धीरता तथा समभाव से ग्रादि से ग्रन्त तक निवाहा। उनके व्याख्यान का सारांश मैं नीचे देती हूं—

"ग्राज कोई चार वर्ष बाद मैं ग्राप लोगों के सम्मुख उपस्थित हुई हूं। मेरी पहली ग्रैार ग्राज की स्थिति में ग्राकाश पाताल का ग्रन्तर है। इसी लिये वही बम्बई, वही स्थान ग्रैार वही ग्राप मुझे नई सी प्रतीत होती हो। जिस प्रेममय पवित्र सहवास में मेरे २७ वर्ष बीते हैं; उसके वियोग में मुझे ग्रपना दुःख रोना उचित नहीं है। दैवेच्छा से जो स्थिति मुझे प्राप्त हुई है उसे ग्रङ्गीकार करके उन्हीं चरण-कमलों का ध्यान करते हुए, विवेक-सहित, ग्रपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर रहना ही मुझे उचित था। परन्तु ग्रत्यन्त खेद से कहना पड़ता है कि मुझ में इतना सामर्थ्य नहीं है। ग्राप निरन्तर उपदेश किया करते थे कि "सुख दुःख शरीर के भोग तथा मन के विकार हैं। उनको महत्व न देना ग्रैार प्रत्येक को ग्रपने कर्तव्य में दक्ष रखना ही शरीर को सार्थक करना है" ग्रैार इसी उपदेश के ग्रनुसार ग्रापका बर्ताव भी था। निद्रारहित रातें बीत जाती थीं। शारीरिक पीड़ा होने पर भी, कर्तव्य कर्म ग्रा जाने से, वे सब भूल जाते थे। कर्तव्य तथा उद्योग पर ग्रापकी ग्रत्यन्त प्रीति थी। ऐसे सत्सङ्ग

का लाभ मिलने पर भी उस दैवी गुण का अल्प अंश भी मुझमें न आया, यह मुझे खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है। नहीं तो क्या जिस महान कार्य के करने में मैंने अठारह वर्ष तक तन मन धन से अविश्रान्त श्रम किया, वही कार्य करने के लिए, यह प्रसंग प्राप्त होने पर भी, मुझे आपकी तरफ़ से निमंत्रण की आवश्यकता होती और गुरुवर भांडारकर को आग्रह करने के लिये श्रम उठाना पड़ता? चाहे जो हो, आज मैं आपके सामने खड़ी हूं। न मैं विदुषी हूं और न मैं इस परिषद् का अध्यक्ष होने के योग्य ही हूं। परन्तु आपने जिस हेतु की प्रेरणा से मुझे यह सम्मान दिया है उसको मैं असाधारण भूषण मानती हूं। और उसके लिये मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ हूं।

"देश के भिन्न भिन्न भागों से आई हुई सब बहनों को आज यहां पर उपस्थित देख मुझे बड़ा आनन्द हुआ है। अभी तक हम में से कोई कोई स्त्रियां सामाजिक सभाओं में उपस्थित हो कर वहीं बोलती थीं। अठारह वर्ष तक ऐसा ही बर्ताव रहा। आज हमको यहां निराले में एकत्र होने का क्या प्रयोजन है? इस नई प्रवृत्ति से किस फलप्राप्ति की हमको आशा है? ये प्रश्न विचारने योग्य हैं। हमारे देश में शिक्षा का प्रचार हो चला है। बहुत सी स्त्रियां सुशिक्षित भी हो गई हैं। कई एक शहरों में स्त्री-समाज भी स्थापित हो गये हैं। सामाजिक उत्सवों में हमको अपने विचार प्रगट करने के लिये उत्तेजन भी दिया जाता है। इस पर भी ऐसे उत्सवों में उपस्थित स्त्रियों की संख्या कम क्यों होती है? इसका एक कारण है। रीति भली हो या बुरी, परन्तु हमारे देश में तीन चतुर्थांश परदे में रहनेवाली स्त्रियों का है। पुरुषों की सभा में उनका आना असम्भव सा है। इसलिए उनके विचार जानना आवश्यक है। बाक़ी, एक चतुर्थांश को सब स्त्रियों की तरफ़ से बोलने का उत्तरदायी होना बड़े साहस का काम है। तो क्या हमारी परदानशीन स्त्रियों को अपने विचार प्रकट करने के लिये किसी स्थान की आवश्यकता नहीं है? नहीं, अवश्य है, और इसीलिए यह सभा की गई है। हममें से जो परदे में नहीं रहती हैं उनमें से भी खुले दिल से पुरुषों में बोल सकनेवाली बहुत थोड़ी हैं। हमारी प्रकृति स्वभाव से ही लज्जाशीला है। हम बोलने का चाहें जितना साहस करें, तो भी पूरी सफलता हमें नहीं हो सकती। कारण यह है कि हमको शिक्षा ही ऐसी मिली है; और घर में बड़ी बूढ़ियों के आचार विचार का मन पर प्रभाव ही ऐसा पड़ा है।

"बहुत सी रीतियां ऐसी हैं जो किसी समय अनुकूल थीं; पर अब वे उपयोगी नहीं हैं। तिस पर भी उनको छोड़ देना कठिन जान पड़ता है। और यद्यपि कठिन न भी हो, तथापि छोड़ने में समय लगेगा। पर क्या हम पुरुषों के बीच अपने विषय में वाद विवाद कर सकती हैं? नहीं, हमारा स्वभाव ही ऐसा नहीं। हमारे यहां अनेक कुरीतियां प्रसूति-विषयक हैं, जिससे अनेक स्त्रियां अकाल-वृद्ध और आजन्म रोगी हो जाती हैं। उन कुरीतियों को दिखलाने के लिए ऐसी ऐसी सभाओं की आवश्यकता है। इससे बोलने का अभ्यास होगा। और यह आशा की जाती है कि ज्ञान का प्रसार तथा स्नेह की वृद्धि के लिए भी ऐसी सभायें एक अच्छा साधन होंगी। हममें से जिनको विद्या से प्रेम है, उनको चाहिए कि अपनी अशिक्षित बहनों को, सीधी तथा रोज़मर्रः की बोल चाल की भाषा में, अपने जाने हुए विषयों को समझा दें। ऐसा करें तो बहुत अच्छा हो। जब दो चार स्त्रियां मिलती हैं तब अपने सुख दुःख इत्यादि की बात एक दूसरे से कहती हैं। उसी तरह, अपने देश की रीत-भाँति सम्बन्धी विचार, हम, स्त्रियों की सभा में सकुच छोड़कर कह सकती हैं। हममें क्या दोष हैं; उनका किस उपाय से दूर होना सम्भव है; और जातियों में क्या क्या गुण हैं; उनको किस तरह हम पा सकती हैं। ये विषय बड़े आवश्यक हैं। क्योंकि इससे समाज का कल्याण होना सम्भव है। और हमारे चित्त के भावों के उदार होने से बुद्धि का विकाश होना भी सम्भव है।

"जैसे कुटुम्ब का कल्याण स्त्री-पुरुष दोनों की बुद्धिमानी पर, तथा एकमत होकर श्रम करने पर, स्थिर है, वैसेही देश के कल्याण की बात भी है। जब स्त्री-पुरुष दोनों प्रयत्न करेंगे तभी देश का कल्याण होगा। इसलिए स्त्रियों का सुशिक्षित होना और उनके विचारों का विकाश होना आवश्यक है। आज अठारह वर्ष से बड़े बड़े महात्मा परिश्रम कर रहे हैं। उनका श्रम कहां तक सफल हुआ है यह विचार करना भावी इतिहासकारों का काम है। परन्तु यह अवश्य है कि स्त्रियों का, अपनी उन्नति तथा स्वतन्त्र विचार करने के लिए, यह सभा करना उन्हीं महात्माओं के परिश्रम का फल है।

"कोई शायद यह कहे कि ऐसी सभाओं से परदे का, घटने के बदले, बढ़ जाना सम्भव है। परन्तु विचार करने से इसमें विशेष सत्यता प्रतीत न होगी। क्योंकि परदे के भीतर भी ज्ञान की वृद्धि होने से हानि के बदले लाभही होगा। और इस रीति से हमारे आन्तरिक विचार अच्छे होने से बाहर के परदे का महत्व आपही आप घट जायगा। ऐसी सभाओं से परदे का विशेष सम्बन्ध भी नहीं है। क्योंकि जिन देशों में परदा बिलकुल नहीं है वहां पर भी स्त्रियों की सभायें होती हैं। उनमें केवल स्त्रीसम्बन्धी विषयों पर ही चर्चा होती है।

"इस सभा का उद्देश क्या होना चाहिये, क्या क्या काम करना चाहिये और किन किन विषयों पर भाषण होना चाहिये—यह काम अनेक सुशिक्षित तथा अनुभवी लोगों का है। मेरा नहीं। इसलिए इन बातों को छोड़ कर और जो कुछ कहना मुझे उचित जान पड़ता है उसे मैं थोड़े में कहती हूं।

"पुराने समय की स्त्रियां क्या क्या काम करती थीं; अब हमारी स्थिति कितनी बदल गई है; हमारी बुद्धि में क्या क्या बातें बुरी जँचने लगी हैं; इन विषयों पर विचार करना उचित है। पुराने समय की स्त्रियों का जीवनक्रम कैसा था, यह हममें से बड़ी बूढ़ियों को अच्छी तरह मालूम होगा। इचल-करञ्जी के वर्तमान राजा के दादा की दादी नियमानुसार नित्य प्रातःकाल उठकर पञ्चगङ्गा स्नान को जाती थीं। वहां से लौटते समय, रास्ते में, अपने गांव के ग़रीबों के घर जाकर, जो कोई बीमार होता था उसकी आप कुशलता पूछती थीं। यदि किसीको प्रसूति की पीड़ा होती थी तो जाति पाँति का विचार न कर आप उसको मदद करती थीं। इसी तरह अनेक प्रकार से भोजन, वस्त्र और औषधि इत्यादि से दुखियों की आप सहायता करती थीं। मध्यान्ह में वे स्त्रियों को धर्म-पुस्तकें सुनातीं और उनका तात्पर्य भी समझाती थीं। उनका जीवन-क्रम ऐसा ही था। सत्कर्म और परोपकार में रानी और धनी स्त्रियों का ही अधिकार है, यह ठीक नहीं। मध्यम वृत्ति की स्त्रियां भी ये बातें करती हुई देखी गई हैं। दूसरे के दुःख से दुःखित होना नारिजाति का स्वभाव ही है। इस को सब तरह उत्तेजित करना ही हमारा धर्म है। प्राचीन काल से जो हमारी प्रथा चली आई है हमें उसको चिरस्थायी रखना चाहिए। शहर की दो चार वयस्क स्त्रियों को महीने में एक आध बार अपने शहर के अस्पतालों में जाकर रोगियों को देख भाल आना चाहिए, और वहां पर जिस बात की कमी हो उसके हटाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। यह हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। केवल पुरानी प्रथा का अनुकरण ही है।

दूसरा काम कन्या-पाठशालाओं की देख-भाल करना है। हर गाँव और हर शहर में कन्या-पाठशालाओं की आवश्यकता है। परन्तु इन पाठशालाओं की तरफ़ जो हमारा कर्तव्य है उसको हम कहां तक निबाहती हैं, इसका भी विचार करना चाहिए। हमको महीने में एक दो बार इन पाठशालाओं को देखना चाहिए और वहां के प्रबन्ध इत्यादि में जो त्रुटि हो उसके संशोधन का उपाय करना चाहिए। कन्याओं को अल्प वय में सुसराल जाना पड़ता है। इससे शिक्षा की हानि पहुंचती है। परन्तु उसके साथ हमारे घर बहुयें भी तो आती हैं। यदि उनकी उम्र पाठशाला जाने योग्य हो तो उनको उचित शिक्षा देना हमारा धर्म है।

आज कल हमारे लड़के बड़ी बड़ी परीक्षायें पास करते हैं। विज्ञान तथा साहित्य की तरफ़ उनका चित्त अधिक आकृष्ट रहता है। इसलिए स्वभाव से ही वे यह चाहते हैं कि उनकी स्त्रियां भी सुशिक्षित हों। परन्तु न होने से उनके चित्त में नैराश्य उत्पन्न होता है। और माता तथा पत्नी का जैसा आदर उन्हें करना चाहिए वैसा वे नहीं करते।

अस्पताल और पाठशालाओं की देख-भाल से बढ़कर अनाथ बालक और स्त्रियों की तरफ़ भी हमको ध्यान देना चाहिए। यह काम विशेष गौरव का है। प्लेग तथा अकाल से अनेक बालक तथा स्त्रियां अनाथ हो गई हैं। इनमें कोमल वय की बालविधवाओं की सहायता दूसरे प्रकार से करनी चाहिए। परन्तु जिन स्त्रियों की उम्र कुछ अधिक है और जिनके बालक भी हैं, वे बाहर जाकर अपने निर्वाह के लिए कोई काम नहीं कर सकती हैं। उनको बालकों की सेवा के बाद जो समय मिले उसमें सीना पिरोना इत्यादि कामों में नियुक्त करना चाहिये। और कुछ नक़द रुपयों से मदद भी करनी चाहिए। वस्त्र-दान की योजना हो तो और भी उत्तम है।

जिन अनाथ बालिकाओं की दशा विशेष शोचनीय है; जिनकी आशा का अङ्कुर सूख गया है; जिन बेचारियों का जन्म व्यर्थ हो गया है; तथा समाज में जिनका आदर नहीं रहा—उनको हमें यह बतलाना चाहिए कि किस तरह से उनका जीवन सफल होगा। इन बालिकाओं के लिए अध्यापक कर्वे ने पूना में "अनाथ-विधवाश्रम" खोला है। वहां पर ३०-३५ लड़कियां शिक्षा पाती हैं। उनके चित्त में ज्ञान के साथ धर्म तथा स्वार्थ-त्याग उत्पन्न करने के लिए विशेष उद्योग किया जाता है। यह हर्ष की बात है।

अपने देश की बहनों के कल्याण के लिए कोई काम करने में बड़ा गौरव है। यह बात इन बालिकाओं को समझाना चाहिए और अपना धर्म समझकर उनसे यह काम कराना चाहिए। "सिस्टर्स" (Sisters) नामवाली स्त्रियां पाश्चात्य देशों से इस देश में आती हैं। वे अपने माता पिता और घर द्वार छोड़ कर, आजन्म कुमारी रहने तथा स्वार्थ त्याग का व्रत धारण करके सारी उम्र परोपकार और परमार्थ में बिताने का प्रण करती हैं। उसीका उदाहरण लेकर अपने आश्रम की बालिकाओं को ऐसे अच्छे काम के लिये तैयार करना ही अध्यापक कर्वेकी आकांक्षा है। उसीके अनुसार आश्रम में शिक्षा दी जाती है। अन्धे, बहरे तथा और गूंगों की शालाओं का, निराश्रित वृद्ध और अपाहिजों के आश्रमों तथा दूसरों के घर जा जा कर शिक्षा देने इत्यादि के समान छोटे छोटे काम यदि इन बालिकाओं को दिये जायँ तो वे उन्हें प्रेम से करें। ऐसे पुण्य कार्य में सहायता देना हमारा परम धर्म है।

इससे स्पष्ट है कि यदि हम करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। इस लिये आलस छोड़, उद्योगशीलता ग्रहण कर, परोपकार और धर्मशीलता से प्रेरित हो कर, आज तक स्त्री और पुरुष दोनों का कल्याण सोचते सोचते थके हुये हमारे पुरुषों को, प्रेमपूर्वक, एक मत होकर, सब कामों में हमें सहायता देना ही उचित है। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता विशेष है। वह श्रेष्ठता केवल अच्छी स्त्री के ही कारण है। इसलिए अपनी श्रेष्ठता तथा गौरव को चिरस्थायी रखने के लिये प्रत्येक स्त्री को सावधान रहना चाहिये; प्रत्येक स्त्री को परोपकार का ध्यान रखना चाहिये; और प्रत्येक स्त्री को सुशिक्षित होकर समाज का कल्याण करने में सहायक होना चाहिए।

श्रीमती रमाबाई का व्याख्यान पूरा हो जाने के बाद कुमारी शीरीन काबराजी ने श्रीमती लेडी कर्ज़न के असाध्य रोग से मुक्त हो जाने पर आनन्द प्रकट करने का प्रस्ताव किया, जिसका अनुमोदन सौभाग्यवती धनकुंवरबाई पुरुषोत्तमदास ने किया। इसके पश्चात् विशेष आनन्द-प्रदर्शन किया गया। अनन्तर सौभाग्यवती तथा कुमारी स्त्रियों ने गुजराती और मराठी में भाषण किये जिनमें से मुख्य मुख्य स्त्रियों के नाम मैं नीचे देती हूं—



बिजली की रोशनी से प्रकाशित प्रदर्शनी के मुख्य-द्वार का दृश्य (रात्रि के समय)

National Library,
Calcutta-27.



स्त्रियों की कला कुशलता के विभाग का चित्र

नाम	विषय	भाषा
मिसेज़ अल्बास तैयबजी	स्त्री शिक्षा	उर्दू
सौभाग्यवती विद्या गौरी रमण-भाई, बी० ए०	,,	गुजराती
,, सरस्वती मणीलाल	,,	,,
कुमारी काशीबाई नवरंगे, बी० ए०	,,	मराठी
सौ० वेणुताई नामजोशी	परोपकार	मराठी
,, शारदा सुमन्त, बी०ए०	,,	गुजराती
,, अंबाबाई खांडवाला	,,	,,
,, रतनबाई लक्ष्मीदास	,,	,,
,, प्रियंवदा दिवाटिका	,,	,,
,, उमाबाई केलकर	अनाथालयों की दशा तथा उनके सुधार	मराठी
,, सेवतीबाई निकांबे	शहर तथा गांव में प्राथमिक शिक्षा के लिये पाठशालाओं की आवश्यकता	मराठी
,, काशीबाई कानिटकर	विधवाओं को शिक्षक तथा दाई बनाने के सरल उपाय	मराठी
,, पार्वतीबाई आठावाले	बालविवाह और उसके अनिष्ट परिणाम	मराठी
,, धनकुंवरबाई पुरुषोत्तमदास	,,	गुजराती
कुमारी मथुराबाई जोशी	कुलव्यवहार तथा नये विचारों में मेल करने के उपाय	मराठी
डा० कृष्णाबाई केलवकर, बी० ए०, एल० एम० एस०,	स्त्रियों की आरोग्यता-सम्बन्धी-योजना	मराठी
सौ० तापीबाई मोतीवाला	,,	गुजराती
,, रखमाबाई केलवकर	बालकों का पालन पोषण	मराठी

इसके बाद भारतवर्ष की सुविख्यात कवि सौभाग्यवती सरोजनी नाइडू ने निज-रचित कविता "टू इण्डिया" (To India) अर्थात् "हिन्दुस्तान को" अङ्गरेज़ी में पढ़ी। तदुपरान्त सभापति को हर्ष-पूर्वक धन्यवाद देकर सभा विसर्जन की गई।

रामदुलारी दुबे।

बम्बई की प्रदर्शनी।

कांग्रेस का मण्डप।

कांग्रेस का बीसवां अधिवेशन गत दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में हुआ। उसी के मण्डप का चित्र इस संख्या में दिया जाता है। मण्डप का व्यास ५०० × ४०० फ़ुट है। इसमें बारह दरवाज़े हैं। मुख्य द्वार उत्तर की ओर है। इसके तैयार करने में बीस हज़ार से अधिक रुपये ख़र्च हुए हैं। मण्डप की रचना जैसी मनोहर थी, वैसी ही उसमें लोगों की ठसाठस भीड़ थी। ८०० से अधिक प्रतिनिधि थे, २०० के लगभग स्त्रियां थीं और १०००० प्रेक्षक जन थे। यथार्थ में मण्डप की शोभा और स्वदेशाभिमानी भारतवासियों का उत्साह प्रशंसनीय था।

प्रदर्शनी।

कई दिनों से लोग इस बात की चर्चा कर रहे हैं कि बम्बई में एक अजीब प्रदर्शनी हुई थी। प्रदर्शनी क्या, वह प्रत्यक्ष मय-सभा ही थी! पहले तो इस देश में बम्बई एक अपूर्व शहर है। उसमें समुद्र के किनारे, ओवल नाम के सुप्रसिद्ध मैदान में, प्रदर्शनी के लिये स्थान दिया गया, और उसके तैयार करने में ख़ानबहादुर मर्ज़बान तथा आनरेबल मि० विठ्ठलदास दामोदरदास ठाकरसी जैसे कार्यकुशल लोगों ने परिश्रम किया। फिर उसकी शोभा और उपयुक्तता की बात ही क्या कही जाय!

पूर्व-इतिहास।

पाठकों को यह बात विदित होगी कि यह प्रदर्शनी कांग्रेस की ओर से की गई थी। यूरोप में औद्योगिक उन्नति का आरम्भ प्रदर्शनियों से हुआ है। इसी प्रथा का अवलम्ब करके कांग्रेस ने भी इस देश में प्रतिवर्ष प्रदर्शनी करना आरम्भ किया है। हर्ष की बात है कि हमारे मुखियाओं का ध्यान देश की औद्योगिक स्थिति की ओर गया है। कांग्रेस की पहली प्रदर्शनी सन् १९०१ ई० में

कलकत्ते में हुई थी। उस समय कूचबिहार के महाराजा प्रेसिडेण्ट थे। दूसरी प्रदर्शनी सन् १९०२ में अहमदाबाद में हुई। उसको बड़ौदा के विद्वान् तथा देशहितैषी महाराजा श्रीमान् सयाजीराव ने खोला था। तीसरी प्रदर्शनी सन् १९०३ में मद्रास में हुई। मैसोर के महाराजा उसके अध्यक्ष थे। गत १९०४ के दिसम्बर में बम्बई में लार्ड लैमिंग्टन महोदय ने जिस प्रदर्शनी को खोला वह कांग्रेस की चौथी प्रदर्शनी है। यह सबसे अधिक रमणीय, शोभास्पद, विस्तृत और शिक्षादायक हुई है।

हेतु और लाभ।

प्रदर्शनी से यह लाभ है कि देश के व्यापार, कृषि, कलाकुशलता आदि भिन्न भिन्न उद्योगों में कितनी उन्नति हुई है और अब किस प्रकार अधिक उन्नति की जा सकती है, इस विषय का विचार जागृत हो कर लोगों के मन में कुछ उद्योग करने के लिये उत्साह उत्पन्न होता है। बम्बई की प्रदर्शन-कमेटी के चेअरमन (सभापति) मि० ठाकरसी ने कहा है कि "इस प्रदर्शनी का उद्देश्य यह है कि सब लोगों को भारतवर्ष के कारखाने, उद्योग और कला-कुशलता आदि का नमूना दिखलाया जाय। इसी के साथ अन्यान्य देशों की कारीगरी भी प्रदर्शित की जाय। इससे हमारे कारीगरों को नये नये नमूने दिखाई देंगे। वे अपने प्रचलित कारखानों की उन्नति करने के लिये उत्तेजित होंगे, और अन्य लोग भी कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे।" यथार्थ में प्रदर्शनी को उद्योग-शिक्षा की शाला ही कहना चाहिये।

रचना।

ऊपर लिखा गया है कि प्रदर्शनी का स्थान समुद्र के किनारे ओवल नामके मैदान में है। इस के सामने सेक्रेटेरियट की, यूनिवर्सिटी (राजाबाई) टावर की और हाईकोर्ट की इमारतें हैं। प्रदर्शनी में भिन्न भिन्न पदार्थों को व्यवस्थित रीति से रखने के लिये भिन्न भिन्न स्थान (कोर्ट) बनाये गये हैं। प्रदर्शनी की भूमि लम्बवर्तुलाकार है, और उसका विस्तार २००० फुट लम्बा और ६०० फुट चौड़ा है। इसमें छोटी बड़ी सौ इमारतें बनी हुई हैं जिन में भांति भांति के पदार्थ रक्खे गये हैं। दूकानें भी बहुत सी लगी हुई हैं। उनके असंख्य पदार्थों के अतिरिक्त अनुमान १००० लोगों के द्वारा दो लाख से अधिक पदार्थ प्रदर्शित किये गये हैं। प्रदर्शनी का मुख्य द्वार ठीक राजाबाई टावर के सामने बना हुआ है। इस द्वार में जालीदार नक़्शा का काम करके सुन्दर मेहराबें बनाई गई हैं। रात के समय यहां बिजली की रोशनी की जाती है। उसकी अनुपम शोभा का वर्णन हम शब्दों में नहीं कर सकते। हम उसका एक चित्र ही यहां प्रकाशित कर देते हैं। पाठक, इस अद्भुत दृश्य को ओर अवश्य देखिये। जिस प्रदर्शनी के द्वार ही का वर्णन करने में हमारी लेखनी असमर्थ है, उसकी सम्पूर्ण रचना, विस्तार और पदार्थों का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

दर्शक जब प्रदर्शनी के मुख्य द्वार पर पहुंचता है तब वह उसके अद्भुत विस्तार को देख कर ऐसा विस्मित हो जाता है कि वह इस बात का निर्णय ही नहीं कर सकता कि मैं यहां क्या देखूं और किधर से देखना आरम्भ करूं। ठीक यही दशा इस समय हमारे मन की है। प्रदर्शनी के अगणित पदार्थों का यथोचित वर्णन किस प्रकार किया जाय? यदि हम प्रत्येक पदार्थ का वर्णन यथाक्रम लिखें तो सरस्वती में स्थान ही नहीं दिया जायगा; और यदि संक्षेप में वर्णन करें तो बहुत सी बातें छूट जायँगी। अतएव हम प्रथम प्रदर्शनी के मुख्य मुख्य भागों तथा वहां के प्रदर्शित मुख्य मुख्य पदार्थों का नाम-निर्देश करके कुछ विशेष भागों ही का वर्णन करेंगे। इससे पढ़नेवालों को प्रदर्शनी की कल्पना भली भांति हो सकेगी।

विभाग और वर्णन।

यदि दर्शक प्रदर्शनी के मुख्यद्वार पर पहुंचकर अपनी दाहनी ओर से प्रदर्शनी की लम्ब-वर्तुलाकार भूमि की प्रदक्षिणा करे तो उसको मुख्य मुख्य जो भाग दिखाई देंगे उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है—

१—खनिज पदार्थ ।

यहां भिन्न भिन्न धातु जैसे लोहा, पीतल, कांसा, तांबा, सीसा आदि के बने हुए पदार्थों का संग्रह है। यहां सोने की कसौटी का एक कांटा है। उससे सोने का वज़न मालूम हो जाता है और यह भी मालूम हो जाता है कि असल सोना कितना है और मिलावट कितनी है। यह कांटा अमृतसर के एक कारीगर का बनाया हुआ है।

२—वनस्पति-संग्रह ।

यहां वनस्पति के बने हुए खाने पीने के पदार्थ हैं। इस जगह लकड़ी का एक कटघरा है। उसमें शक्कर का बना हुआ ३० मन का एक सिंह है। उस पर इस प्रकार से रङ्ग दिया गया है कि दर्शकों को वह जीते सिंह की तरह दिखाई देता है। इसी के पास शक्कर का एक महादेव का मन्दिर भी देखने लायक़ है।

३—बम्बई के आर्टस्कूल का मण्डप ।

विद्यार्थियों को धातु, लकड़ी आदि की जो कारीगरी सिखलाई जाती है उसीके नमूने इसमें रक्खे हुए हैं। यह मण्डप ताजमहल के नमूने का है और उसे आर्टस्कूल के विद्यार्थियों ने ही बनाया है। इसीके पास अन्धों की एक शाला है।

४—बेसिल मिशन का ईंटों का घर ।

मङ्गलोर की ईंटें, खप्पर, मिट्टी के बर्तन आदि प्रसिद्ध हैं। इस घर में इन्हीं पदार्थों के नमूने प्रदर्शित किये गये हैं।

५—विक्टोरिया टेक्निकल इन्स्टिट्यूट का कोर्ट ।

इसको इन्स्टिट्यूट के विद्यार्थियों ने ही तैयार किया है और इसमें उन्हींके बनाये हुए पदार्थों के नमूने रक्खे हैं।

६—बम्बई के आदमजी पीरभाई के कारखाने में जो डेरे बनते हैं उनका नमूना दिखलाने के लिये एक ७२००० रुपये का सजा सजाया डेरा यहां लगा हुआ है।

७—जुलाहों का कारख़ाना ।

यहां सूरत के अनाथालय और अहमदनगर के मिशनस्कूल के बालक करघों पर काम करते हुए दिखाई देते हैं। बालकों की उम्र ७-८ वर्ष से अधिक नहीं है।

८—यन्त्रों और कलों का संग्रह ।

यहां छापेख़ाने की कलें, रङ्ग देने के यन्त्र, एसिटेलिन ग्यास उत्पन्न करने की कलें, बर्फ़ बनाने और पानी साफ़ करने के यन्त्र, बिजली के पंखे, एञ्जिन और बायलर आदि हैं।

९—कृषिविभाग ।

इस विभाग के व्यवस्थापक गवर्नमेण्ट के कृषि-विभाग के अधिकारी मि० नाइट हैं। यहां हर एक प्रकार के अनाज, बीज, पौधे, फल, फूल, तरकारी आदि का संग्रह किया गया है। कृषि के उपयोगी खाद और नूतन औज़ारों के नमूने भी रक्खे गये हैं। आबपाशी के यन्त्र भी यहां हैं। यहां इन सब पदार्थों का केवल संग्रह ही नहीं किया गया है, वरन् उनका उपयोग भी प्रत्यक्ष रीति से प्रेक्षकों को वहीं समझा दिया जाता है। इन प्रयोगों के द्वारा किसानों को लाभ पहुंचाने की विशेष व्यवस्था की गई है। यह विभाग भारत के किसानों को बहुत लाभदायक है।

१०—वनविभाग ।

इसमें विशेषतः बम्बई के जङ्गलों में पैदा होनेवाले पदार्थों का अधिक संग्रह है।

११—रजवाड़ों के पदार्थ-संग्रहालय ।

मीरज, भावनगर, कोल्हापुर, मैसोर, बड़ौदा, जयपुर आदि राज्यों से आये हुए पदार्थ यहां भिन्न भिन्न स्थानों में रक्खे हैं।

१२—हास्योत्पादक पदार्थ-संग्रह ।

इसको अङ्गरेजी में लाफ़िंग गैलरी कहते हैं। यहां तरह तरह के शीशे रक्खे हुए हैं। उनमें दर्शकों की नाक, मुँह, भौंह, सिर आदि अवयव अद्भुत प्रकार के दिखाई देते हैं। स्वयं अपने रूप की विलक्षण विकृति को देखकर देखनेवाले हँसते हँसते लोट पोट हो जाते हैं।

१३—रत्नशाला ।

नाम ही से प्रसिद्ध है। इस विभाग में लाखों रुपयों की संपत्ति भरी हुई है! दर्शक मन ही मन ललचाकर रह जाते हैं!! भारत का सौभाग्य!!!

१४—स्वास्थ्यविद्या-विभाग।

इसका सब बन्दोबस्त बम्बई की म्युनिसिपाल्टी के हेल्थ आफ़िसर टर्नर साहिब ने किया है। यहां स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी नई नई कलों का संग्रह है और प्रत्यक्ष प्रयोग दिखलाकर व्याख्यान देने की व्यवस्था की गई है।

१५—गाड़ीख़ाना, १६—सीने की ग्रैार क़सीदा काढ़ने की कलें।

निकट ही केम्प कम्पनी की दूकान है। वहां एक ऐसी वस्तु का संग्रह किया गया है कि जो इस समय सारी दुनिया में अप्राप्य है। उसका नाम रेडियम है। इस धातु का वर्णन पाठकों ने सरस्वती की किसी गत संख्या में अवश्य पढ़ा होगा।

१७—स्त्रियों की कला कुशलता का विभाग।

बम्बई की प्रदर्शनी का यह विभाग अत्यन्त प्रेक्षणीय तथा प्रशंसनीय है। इस विभाग की प्रेसिडेण्ट लेडी जमसेटजी जिजीभाई, वाइस प्रेसीडेण्ट लेडी पेटिट, मिसेस बदरुद्दीन तैयबजी ग्रैार मिसेस चन्दावरकर हैं। सात स्त्रियां इस विभाग की सेक्रेटरी हैं, १ मिसेस लुक़मानी, २ मिसेस कोठारे, ३ मिसेस टाटा, ४ मिस हसन अली फ़ैज़ी, ५ मिसेस रानडे, ६ मिस मानकजी करसटजी ग्रैार ७ मिस नैारोजी पाटक। इन्हीं स्त्रियों ने स्वतन्त्रता पूर्वक इस विभाग की व्यवस्था की है। यह विभाग दिसम्बर की १० तारीख़ के लेडी लेमिंग्टनद्वारा खोला गया था। बम्बई के गवर्नर लार्ड लेमिंग्टन ने कहा है कि "इस प्रदर्शनी के सब पदार्थ अच्छे हैं ही; परन्तु स्त्रियों के विभाग में जो पदार्थ रक्खे गये हैं वे अवर्णनीय हैं।" यथार्थ में उद्योग-वृद्धि ग्रैार स्वतन्त्र कार्यक्षमता की दृष्टि से यह विभाग भारत की महिलाओं के लिये अत्यन्त भूषणास्पद है। इस विभाग का एक चित्र अन्यत्र प्रकाशित है। जी चाहता है कि इस विभाग के प्रत्येक पदार्थ का थोड़ा सा वर्णन लिखा जाय; परन्तु स्थल-सङ्कोच के भय से लेखनी को बहुत आगे बढ़ने से रोकना पड़ैगा।

इस विभाग में कुछ देशी ग्रैार कुछ विदेशी स्त्रियों के बनाये हुए भांति भांति के पदार्थ व्यवस्थित रीति से रक्खे गये हैं। उनमें से कुछ पदार्थों का उल्लेख हम यहां करते हैं। पहले तो दरवाज़े के भीतर जाते ही पोत ग्रैार गुरियों की बनी हुई सुन्दर सुन्दर झालरें टँगी हुई दिखाई देती हैं। ये सब प्रायः पारसी स्त्रियों की बनाई हुई हैं। दीवारों पर विविध रङ्गों के चित्र इस स्थान की शोभा के बढ़ा रहे हैं। राजा रविवर्मा के लक्ष्मी ग्रैार सरस्वती के चित्रों के नूतन वस्त्रालङ्कार से भूषित देख लक्ष्मीबाई ठाकुर की प्रशंसा किये बिना किसी से रहा नहीं जाता। एक चित्र में भारतमाता के समीप, कांग्रेसदेवी के, अपनी नूतन कन्या प्रदर्शनी के लिये हुए, भारत के भावी गैारव की सूचना करती हुई देख, प्रत्येक विचारशील दर्शक का मन क्षण भर चिन्ता में डूब जाता है। मिस घोषाल का बनाया हुआ एक बङ्गाली बुढ़िया का चित्र, रत्नाबाई का बनाया हुआ कागज़ का मकान, मिसेस कावसजी का, नारियल के खपरे से, बनाया हुआ मनुष्य का सिर—ये पदार्थ देखने योग्य हैं। इस स्थान के मध्य में इङ्गलैण्ड के राजघराने की स्त्रियों की कारीगरी ग्रैार क़सीदे के कुछ नमूने कांच की अलमारियों में रक्खे हुए हैं। इनमें स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया के लिये प्रिंसेस विक्टोरिया का बनाया हुआ चित्र विचित्र पंखा प्रशंसा करने योग्य है। चटगांव की रानी ने स्वयं अपने हाथ से एक टेबल क्लाथ (मेज़ पर बिछाने का कपड़ा) बनाकर भेजा है। इस देश के भिन्न भिन्न ज़नाना मिशन, अनाथालय, फ़ीमेलस्कूल, आर्टस्कूल आदि की लड़कियों तथा स्त्रियों की बनाई हुई इतनी वस्तुएं यहां रक्खी गई हैं कि उनका वर्णन करना कठिन है। इस स्थान में भिन्न भिन्न जाति की स्त्रियों की अनेक मूर्तियां वस्त्रालङ्कार से भूषित रक्खी हुई हैं। उनके देखने से प्रत्येक जाति के रहन सहन ग्रैार पहनाव ओढ़ाव का अच्छा परिचय होता है। यहां विशेष ध्यान में रखने

योग्य एक बात यह है कि कुछ पारसी स्त्रियां क़सीदा, फ़ीता, लेस, पट्टी आदि का काम स्वयं अपने हाथों से कलों पर करके दर्शकों को दिखलाया करती हैं। इससे दर्शकों को इस विषय का साक्षात् ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

१८—सूती कपड़े, १९—चित्रकारी कलाभवन आदि।

इस स्थान पर आतेही प्रदर्शन की लम्बवर्तुलाकार प्रदक्षिणा समाप्त हो जाती है।

विशेष स्थान।

उक्त प्रदक्षिणा करते करते जो स्थान छूट गये थे, उनमें से कुछ विशेष रमणीय स्थानों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

१—यन्त्रों के विभाग के पास एक वाटरशूट अथवा जलप्रतन-क्रीड़ा का विभाग है। लकड़ी का एक बहुत ऊंचा पुल बना है। उसके नीचे एक तालाब है। पुल पर से छोटी छोटी डोंगियां, कल के सहारे, अत्यन्त वेग से फ़िसलती हुई तालाब में धम से जा गिरती हैं। इस क्रीड़ा का वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता। इसका स्वयं अनुभव ही करना चाहिये।

२—इङ्गलिश इलेक्ट्रिकल कम्पनी का गुम्बज़। इसमें बिजली की रोशनी से अनेक सुन्दर सुन्दर चित्र दिखाई देते हैं।

३—बिजली का फ़वारा।

प्रदर्शनी की विस्तीर्ण भूमि में रात्रि के समय जब सब विद्युद्दीप प्रकाशित हो जाते हैं तब इस फवारे की सहस्रों धाराओं में से प्रतिबिम्बित होनेवाले लाल, हरे, नीले, पीले, बैंगनी, सुनहरी आदि भाँति भाँति के रङ्गों की अप्रतिम शोभा दिखाई देती है। उस समय वहां सज बज कर घूमनेवाली बम्बई की अनेक जाति की रमणियों को देख इन्द्रभुवन के वर्णन का स्मरण आता है।

आय-व्यय आदि।

इस प्रदर्शनी के आयव्यय आदि का लेखा भी विचार करने योग्य है—

व्यय।

इमारतें	१४००००)
रोशनी	४००००)
यन्त्र	२००००)
छपाई	६५००)
आफ़िस	१७०००)
मुतफ़र्क़ात	४९२००)
	२,७२,७००)

आय।

जो सामान बेचा जायगा उसकी कीमत	५१०००)
१७ जनवरी तक टिकट की बिक्री ...	१६८०००)
चन्दा	३२०००)
किराया	२४०००)
	२,७५,०००)

प्रदर्शनी फ़रवरी की १० तारीख़ तक खुली रहेगी। पर, यह लेख हम जनवरी में हीं लिख रहे हैं। तब तक बीस पचीस हज़ार रुपये टिकटों की बिक्री से और वसूल होंगे। इस हिसाब से तीन लाख के लगभग आय होगी।

तारीख़ १७ जनवरी तक प्रदर्शनी के दर्शकों की संख्या ३३०४७२ थी। माधवराव सप्रे

कलकत्ते की काल-कोठरी।

[गत अङ्क के आगे]

साढ़े ग्यारह बजे, जितने आदमी ज़िन्दा बचे थे सब, बदहवास होने को हुए। जिसके मुँह में जो आया सो उसने बका। मानापमान का ख़याल जाता रहा। पानी पर लोगों की प्रीति अब कम हुई। हवा, हवा, हवा, की आवाज़ सबके मुँह से निकलने लगी। गारद के ऊपर, सिराजुद्दौला के ऊपर और राजा मानिकचन्द नामक कलकत्ते के नये गवर्नर के ऊपर बहुत ही ख़राब ख़राब गालियों की बौछार होने लगी।

आशा थी कि इस प्रकार बेइज्ज़ती होते देख गारद के सिपाही ज़रूर गोली छोड़ेंगे। इसलिए कोठरी के लोग दौड़ दौड़ कर खिड़की के पास आने लगे, जिसमें पहली ही गोली से उनका काम तमाम हो। परन्तु गोली नहीं चली। सबको हताश होना पड़ा। अभागों को इस तरह मरना बदा ही न था। इस प्रकार बेबस होकर कितने ही मुर्दों के ऊपर ज़मीन पर गिर गये और वहीं पर पड़े पड़े मौत के मुँह में प्रविष्ट हुए। जिनमें कुछ शक्ति बची थी उन्होंने खिड़की की ओर दौड़ लगाई और दूसरों की पीठ, और किसी किसी के सिर पर भी, होते हुए वे वहां पहुँच गये। वहां पर उन्होंने खिड़की के सीकचों को इतने ज़ोर से जा पकड़ा कि फिर वे उस जगह से किसी प्रकार हिलाये नहीं हिले। जो लोग इस बोझ और दबाव के नहीं सहन कर सके वे गिर गये और गिरते ही उनका दम निकल गया। इस समय उस कमरे में निहायत सख्त् बदबू पैदा हो गई थी। यद्यपि मेरे ऊपर बहुत बोझ था, तथापि इस बदबू के कारण मैं अपना सिर नीचे न कर सकता था; दुःसह दुःख सह कर भी मैं खिड़की की ओर उसे उठाये ही रहता था। मेरे प्रियतम दोस्त, वज्र को भी विदीर्ण करने वाली मेरी यह कहानी सुनकर तुमको मुझ पर अवश्य दया आवैगी। इसके कहने की तो मुझे कोई ज़रूरत ही नहीं। साढ़े ग्यारह बजे से दो बजे सुबह तक तीन आदमियों का बोझ मैं सँभाले रहा; तीन आदमी बराबर मुझ पर सवार रहे। अपने घुटने मेरी पीठ पर अड़ा कर, एक मेरे सिर पर लदा था; एक डच सारजण्ट मेरे बाँयें कन्धे पर था; और एक फ़ौजी गोरा मेरे दाहने कन्धे पर! पीछे के दोनों की पसुलियों में अपनी अँगुलियां घुसेड़कर उन्हें तो मैं कभी कभी नीचे गिरा भी देता था; परन्तु मेरा वह दोस्त, जो मेरे सिर पर था, किसी तरह मुझसे हिलाया नहीं हिला। उसने खिड़की की शलाका को खूब ही मज़बूत पकड़ रक्खा था। मैं इस कई मन के बोझ से चूर हो गया होता; परन्तु बचा इस कारण से कि सब तरफ़ से मुझ पर दबाव था। इसीलिए मैं गिरा नहीं; पत्थर के समान जहां का तहां खड़ा रह गया।

यह दुर्दशा देर तक मैंने बरदाश्त की; परन्तु क्रम क्रम से वह असह्य होने लगी। नैराश्य ने मुझे सब तरफ़ से घेर लिया। जीवन मुझे भारी भार मालूम होने लगा। मैंने अपने पाकेट से चाक़ू निकाला और अपना काम तमाम करना चाहा। परन्तु आत्महत्या का ख़याल करके मेरा हाथ रुक गया। अपनी कायरता पर मुझे खेद हुआ। फिर से मुझमें एक नई शक्ति ने प्रवेश किया। पर तीन आदमियों के नीचे वहां पर मैं सुबह तक नहीं रह सका। मैंने खिड़की को छोड़ना चाहा। मेरे पीछे केरी नामक एक जहाज़ी अफ़सर था; लड़ाई में उसने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। उसके पास ही उसकी स्त्री भी थी। इन दोनों में इतना प्रेम था कि बहुत मना करने पर भी वह स्त्री अपने पति के साथ इस कालकोठरी में चली आई थी। केरी को मैंने अपनी जगह देनी चाही। मैं वहां से हटा; परन्तु, अफ़सोस, केरी वहां न पहुंच सका। मेरे हटते ही उस डच सारजण्ट ने मेरी जगह छीन ली। तथापि केरी ने मेरा बड़ा उपकार माना। अब हम दोनों मरने के लिए तैय्यार हुए। खिड़की छोड़कर हम दोनों पीछे हट आये। केरी की हालत अबतर थी। वह अधिक देर तक खड़ा न रह सका। विवश होकर उसे लेट जाना पड़ा और लेटते ही उसका प्राण-पखेरू उड़ता हुआ। इस समय मैं क़रीब क़रीब बेहोश था। मुझे सुख दुःख का कम ज्ञान था। मेरी घबराहट बढ़ी। मुझे चक्कर आने लगा। इसलिए मैं लेट गया। मैंने देखा मेरे पास ही बुड्ढे पादरी बेलामी की लाश पड़ी थी और वहीं उनके बेटे की भी। बेटा लफ्टिनेण्ट था। बाप बेटे ने, हाथ में हाथ रखकर, मौत पाई थी। लेटने पर मुझे इतना होश था कि मरने पर ज़रा देर में मैं भी औरों की तरह पैरों से कुचला जाऊंगा। इससे मैं कुछ डर गया। डरकर मैं सहसा फिर

उठ खड़ा हुआ, और कमरे के किनारेवाले उस चबूतरे पर चला गया जहां मैं एक बार पहले जा चुका था। वहां पहुँचकर जो मैं गिरा तो फिर मेरे होश हवास एकदम चलते हुए। फिर मैं बेसुध होकर वहीं पड़ा रहा।

बेहोशी की हालत में इस भयावने ब्लैक-होल में, क्या क्या हादसे हुए, मैं नहीं जानता। जो लोग होश में रहे उनका बयान ऐसा अत्युक्ति से भरा हुआ है कि उस पर हरगिज़ विश्वास नहीं आता। जैसे जैसे लोग मरते गये, हवा कुछ अधिक मिलती गई। इसी लिए कुछ आदमी मौत से बचे और अन्त तक होश में भी बने रहे। मैं नहीं मरा। परन्तु मुझे बचाने में केवल ईश्वर ही सहायक हुआ। जब सुबह के पाँच बज गये और बहुत गिड़गिड़ाने पर भी गारद ने उस काल-कोठरी का दरवाज़ा नहीं खोला, तब लोगों को मेरी याद आई। उन्होंने समझा कि यदि मैं कहता सुनता तो शायद दरवाज़ा खोल दिया जाता। लूशिंगटन और वालकाट ने ढूंढ़ना शुरू किया। मैं मुर्दों के बीच में पड़ा था। मेरी कमीज़ को देखकर उन्होंने मुझे पहचाना। उनको मालूम हुआ कि तब तक मुझ में कुछ दम बाक़ी है। इस लिए वे मुझे खिड़की के पास ले गये। परन्तु अपना प्राण किसको प्यारा नहीं? अतएव खिड़की के पास मुझे जगह नहीं मिली। अन्त में कप्तान मिलस को मेरी हालत पर दया आई। वे खिड़की के पास से हट गये और उनकी जगह पर मैं रख दिया गया। इस वक्त ६ बजा था। नवाब सोकर उठ चुका था। रात को मौत ने उस कोठरी के भीतर जिस निर्दयता से लोगों को अपना शिकार बनाया था उसका हाल नवाब को सुनाया गया। उसने यह जानना चाहा कि हम लोगों का सरदार, अर्थात् मैं, जीता बचा हूं या नहीं। इस बात को जानने के लिए एक जमादार दौड़ा आया। लोगों ने मुझे उसके सामने किया, और कहा, कि यदि दरवाज़ा खोल दिया जाय तो मैं शायद बच जाऊं। आख़िर ब्लैक-होल का दरवाज़ा खुला। परन्तु खुलने के पहले ही, खिड़की से आनेवाली प्रातःकालीन वायु ने, मुझे सजीव कर दिया था। होश में आकर जो मैंने आँख खोली, मेरा कलेजा फटने लगा; मेरी आँखें फिर बन्द हो गईं। अपने चारों ओर मैंने अनर्थ हुआ देखा! हा, ऐसी भयावनी नरहत्या! सब तरफ़ मुर्दे ही मुर्दे!! लाश के ऊपर लाश!!! उस दृश्य का वर्णन करने का मैं यत्न न करूंगा। मेरी आँखों में आँसू उमड़ आये हैं। ज़रा ठहरो; मैं अब आगे नहीं लिख सकता।

* * * * *

कोई २० मिनट में मुर्दों को हटा कर रास्ता बनाया गया। तब हम लोग एक एक करके बाहर आये। मुझे ज़ोर से बोख़ार था। मैं खड़ा न रह सका। इस लिए वहीं घास पर लेट गया। इतने में नवाब का हुक्म आया कि मैं फ़ौरन ही उसके सामने पेश किया जाऊं। परन्तु मैं चल थोड़े ही सकता था। इस लिए दो आदमियों ने मुझे थाँभा। मैं धीरे धीरे चला। रास्ते में एक जमादार ने बहुत आत्मीयता दिखला कर मुझ से कहा, कि मुझे नवाब को ठीक ठीक बतला देना चाहिए कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ख़ज़ाना क़िले में किस जगह छिपा रक्खा है। उसने कहा कि यदि मैं न बताऊंगा तो मैं तोप से उड़ा दिया जाऊंगा। परन्तु मुझ पर इस धमकी ने ज़रा भी असर नहीं किया। मैं, उस समय, मौत की राह ही देख रहा था। वह महा निर्दयी और ज़ालिम नवाब मौत से अधिक अच्छा और क्या पारितोषिक मेरे लिए दे सकता था?

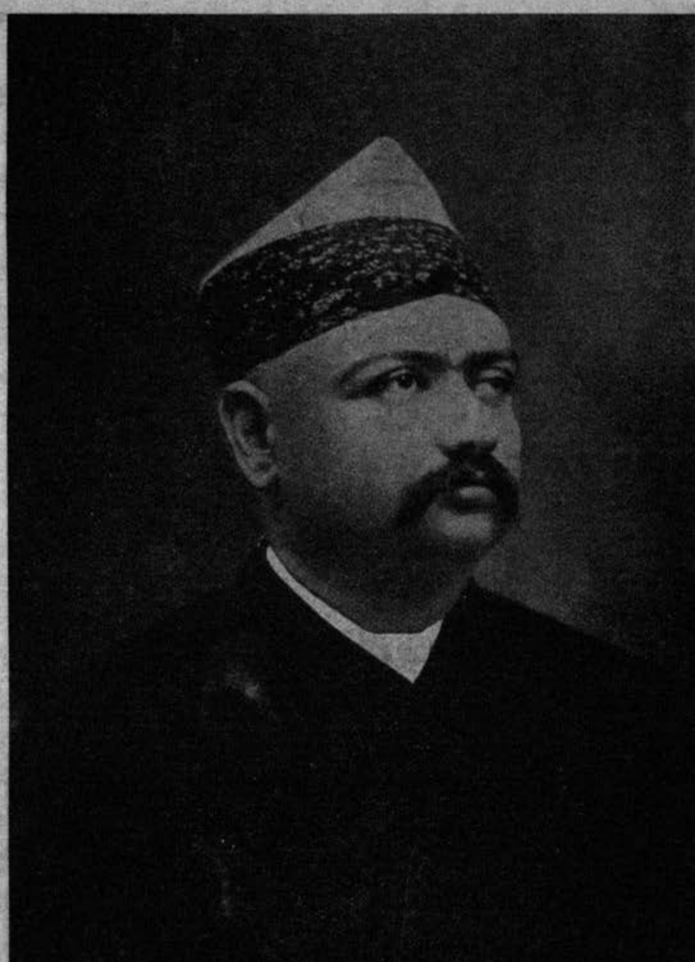
मैं नवाब के सामने हाज़िर किया गया। पास ही लूट के माल का एक ढेर पड़ा था। उसमें से एक बड़ी सी किताब उठवा कर उस पर मुझे बैठ जाने का हुक्म मिला। मैं बैठ गया; परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी मेरे मुंह से आवाज़ न निकली। मेरी ज़बान सूख गई थी। यह देख कर नवाब ने पानी मँगाया। पानी पीने पर वाक्शक्ति फिर मुझे प्राप्त हुई। मैं बोला। अपने और अपने

साथियों पर रात की बीती बातें मैं कहने लगा। पर उन हृत्कम्पकारी बातों के सुनने से नवाब ने इन्कार किया। उसने मुझे रोक दिया, और ख़ज़ाने की बातें पूछनी आरम्भ कीं। उसने कहा मैंने सुना है कि बहुत सा ख़ज़ाना क़िले में गड़ा हुआ है। अगर तुम मुझसे कोई मेहरबानी चाहते हो तो उसे बतला दो। मैंने कहा यह बिलकुल झूठ बात है; यह ख़बर सरासर ग़लत है। क़िले में ख़ज़ाना नहीं है; और यदि हो भी तो मैं नहीं जानता। गत रात को दिये हुए नवाब के अभय-वचनों का मैंने कई बार स्मरण दिलाया। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। दोहाई तिहाई देने पर भी मेरी बात का विश्वास किसीको न आया। मैं क़ैद रक्खा गया। नवाब की ख़ानगी फ़ौज का जो जनरल था उसके मैं सिपुर्द हुआ। मेरे साथ कोर्ट, वालकाट और बरडेट साहब भी क़ैद रक्खे गये। शेष सब, जिनको मौत ने उस रात को न पूछा था, छोड़ दिये गये। केरी साहब की मेम की रिहाई अलबत्ते नहीं हुई। वह बहुत कम उम्र और ख़ूबसूरत थी। काल-कोठरी से निकाली गई लाशें बड़ी ही बेपरवाही से एक खन्दक में फेंक दी गईं और उन पर मिट्टी डाल दी गई।

मेरे ऊपर जो इतनी सख़्ती हुई उसके कारण थे। एक तो यह था कि और लोगों के भगजाने पर मैंने क़िले को बचाने की कोशिश की थी; और मैं बस भर लड़ा भी ख़ूब था। दूसरा यह कि नवाब को यह शक हो गया था कि क़िले में ख़ज़ाना है और मैं उसका भेद जानता हूं। तीसरा यह, कि अमीचन्द ने मेरी शिकायत नवाब से की थी। अमीचन्द को हम लोगों ने क़ैद कर लिया था। मैं चाहता तो क़िले की गवर्नरी मुझे मिलते ही मैं उसे रिहा कर देता; क्योंकि मैं जानता था कि उस पर अन्याय हुआ है; पर उस समय जल्दी में मैं यह बात भूल गया। इसीलिए अमीचन्द ने मुझे माफ़ नहीं किया; और माफ़ करना वह जानता भी नहीं। जो तीन आदमी मेरे साथी बनाये गये उनसे भी अमीचन्द की लाग डाट थी।

२१ जून को सबेरे हम लोग एक बैलगाड़ी पर पड़ाव को पहुंचाये गये। वहां हमारे बेड़ियां डाली गईं। हम चारों एक छोटी सी छोलदारी के भीतर रक्खे गये। इतनी छोटी छोलदारी कि हम सब "नीमे दरूँ नीमे बरूँ"। दैव की गति तो देखिए; रात को मूसलधार पानी बरसा। पर काल-कोठरी की अपेक्षा इस छोलदारी को हमने स्वर्ग समझा; इसमें हमें नन्दन वन का सुख मिला। अब तक मुझे बुख़ार था। आज बुख़ार जाता रहा और उसके गमन के साथ मेरे सारे बदन पर सैकड़ों फोड़ों का आगमन हुआ। २२ तारीख़ को सुबह हम लोग, वैसे ही बेड़ियां पहने हुए, प्रचण्ड धूप में, नदी के किनारे एक खुले हुए बरामदे में घसीटे गये। वहां मेरे तीन साथियों के बदन पर भी फोड़े निकल आये। काल-कोठरी की कराल यन्त्रणायें मानों फोड़ों के रूप में प्रकट हो गईं। इस जगह हमलोगों को मुरशिदाबाद ले जाने का हुक्म हुआ। तुमने मुरशिदाबाद नहीं देखा; इस लिए मेरे साथ चल कर देख आओ। मुझे इस वक़्त, लिखने की फ़ुरसत है। पढ़ने के लिए तुम को फ़ुरसत करनी होगी।

२४ को तीसरे पहर हम लोग नाव में रवाना हुए। नाव थी बड़ी, पर पुरानी थी। लूट का माल भी कुछ उसमें लदा था। थोड़ी दूर जाकर उसका एक तख़्ता टूट गया। इस कारण उसमें पानी आने लगा। तिस पर भी लोगों ने उसका पिण्ड नहीं छोड़ा। हमारा बिछौना था बाँसों का एक छोटा सा चट्टा। वही बिस्तरा, वही पलँग। बाँस एक से नहीं थे; कोई छोटा था, कोई बड़ा। वहां लेटे लेटे कभी कभी हम लोग आधे पानी में चले जाते थे और आधे सूखे रहते थे। हम लोग प्रायः दिगम्बर थे; बदन पर बहुत ही कम कपड़ा था। चलते वक़्त हाथ पैर जोड़ कर, हम लोगों ने टाट की पुरानी बोरियों के दो एक टुकड़े माँग लिये थे। धूप और बारिश से बचाने के वही हमारे एक मात्र सहायक थे। हमारे खाने के लिए सिर्फ़ चावल; और पीने के लिए वही नदी का पानी। यद्यपि हमारे शरीर



आनरेबल मिस्टर विट्ठलदास दामोदरदास ठाकरसी,
चेअरमन, प्रदर्शन कमेटी

फोड़ों से ढक गये थे और पैर लोहे से लदे थे, तिस पर भी हम लोगों ने यह चारा पानी अपने लिए ग़नीमत समझा। मरने से हम लोग बच गये यही हमारे लिए क्या कम था? इसी चावल ने हमारी जान बचाई। क्योंकि उस दशा में यदि हमें मद्य और मांस मिलता तो हम लोग कभी ज़िन्दा न रहते।

जब हम लोग हुगली पहुँचे तब मैंने चिन्सुरा के डच गवर्नर बिसडम को एक पत्र भेजा। लूट का जो माल था उसमें कुछ किताबें भी थीं। उनमें से मैंने, अपनी गारद के लोगों से, एक किताब माँग ली। उसके एक कोरे पन्ने पर यह पत्र मैंने लिखा। हमारी दुर्दशा का हाल सुनकर गवर्नर को दया आई। उसने कपड़े लत्ते, खाने पीने का सामान, और कुछ रुपये पैसे भी भेजे। तीन नावें बराबर, एक दूसरे के बाद, वहां से छोड़ी गईं। परन्तु हमलोगों तक एक भी नहीं पहुँची! रास्ते में बहुत सी दिल्लगी की बातें हुईं; परन्तु उनको मैंने प्रत्यक्ष मिलने पर कहने के लिए रख छोड़ा है। हां, यहां पर, मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मेरे हाथ फोड़ों से ख़ाली थे। इसलिए मुझे, कुछ समय तक, इस नाव में, बीमारदारी का काम करना पड़ा था। मैं अपने बीमार और गलित-देह दोस्तों को अपने हाथ से खिलाता था।

जब हमलोग शान्तिपुर पहुँचे तब नाव में बेहद पानी भर गया। वह चलने लायक़ न रही। इस लिए गारद में से एक आदमी ज़मींदार के पास दो एक हलकी नावें माँगने के लिए भेजा गया। परन्तु ज़मींदार ने उसे ख़ूब पीटा और गाँव से निकाल दिया। इस बात का वहां किसीने विश्वास ही न किया, कि नवाब के कैदियों को ले जाने के लिए नावें दरकार थीं। जब वह आदमी लौट आया और ज़मींदार की गुस्ताख़ी का हाल उसने बयान किया, तब हमारी गारद का जमादार ग़ुस्से से लाल हो गया। सब लोग नाव से नीचे उतरे और हथियारबन्द होकर ज़मींदार को सज़ा देने के लिए चले। इतने में एक आदमी को एक ऐसी बात सूझी जो मेरे लिए मृत्यु थी। उसने जमादार से कहा कि वह मुझे अपने साथ, इस बात का सबूत देने के लिए ले चलै, कि सचमुच ही अङ्गरेज़ कैदियों के लिए नावें दरकार हैं। मुझे फ़ौरन ही चलने के लिए हुक्म हुआ। मैंने अपने फोड़े दिखलाये और कहा कि मेरे लिए चलना सर्वथा असम्भव है। मेरे फोड़ों के ऊपर तक बेड़ियां थीं; मैं पैर हिला तक नहीं सकता था। मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा जाना बहुत ही ज़रूरी है तो मेरी बेड़ियां थोड़ी देर के लिए निकाल ली जाँय। वे लोग अपनी आँखों से देख रहे थे कि मैं हिल न सकता था। परन्तु मेरी प्रार्थना का वही फल हुआ जो फल एक ख़ूंख़ार शेर से प्रार्थना करने अथवा हवा से हाथ जोड़ने में होता। मैं चलने क्या, रेंगने के लिए, लाचार किया गया। मुझे इस बात की याद दिलाई गई कि मैं कलकत्ते के क़िले में नहीं हूं, और मेरा फ़र्ज़ इस समय यही है कि मैं हुक्म की तामील करूं। मैं रास्ते पर लाया गया। जी कड़ा करके मैं चला। उस समय दोपहर होने में कुछही देर थी। धूप ख़ूब कड़ी थी। मेरे पैरों से ख़ून का नाला बहने लगा। पग पग पर मैं बेहोश होकर ज़मीन परगिरने से अपने शरीर को रोकने की चेष्टा करता था। वैसा दर्द मुझे कभी नहीं भोगना पड़ा। मैं उसका बयान नहीं कर सकता। उसे मेरा जी ही जानता है।

जब हमलोग ज़िले की कचहरी के पास पहुँचे तब हमने ज़मींदार को अपनी फ़ौजफाटा समेत मुक़ाबिले के लिए तैयार पाया। परन्तु जब नवाब को गारद ने मुझे दिखलाया, और चार लाख रुपए मेरी क़ीमत बतलाई, तब ज़मींदार ने अपनी ग़लती क़बूल की। उसने प्रतिकूलता तत्काल छोड़ दी और शान्तिपुर से नावें मंगा देने का वचन भी दिया। परन्तु जमादार ने उसे बाँधकर नाव पर भेजना चाहा। इस पर ज़मींदार ने बहुत हाथ पैर जोड़े। अन्त में, इस तकलीफ़ के बदले ख़ातिर ख़ाह पारितोषिक देने पर उसे रिहाई मिली।

नाव से यह जगह कोई आध मील थी। मैं म्रियमाण दशा में था। गारदवालों ने जिस कठोरता और निर्दयता का व्यवहार मुझसे किया उस पर उनको भी पीछे से तरस आया। कुछ देर आराम करने के बाद मुझे वापस ले चलने को उन्हें हिम्मत हुई। उनका कलेजा रक्त-मांस का हरगिज़ न था; सख़्त पत्थर का था। परन्तु उनको भी दया आई। कुछ दूर तक वे मुझे गोद में ले गये। कुछ दूर तक मुझे उन्होंने दोनों तरफ़ से थाँभा; तब मैं चल सका। धूप से बचने के लिए उन्होंने अपनी ढालों से मुझ पर छाया की। भगवान, तुम ऐसा दुःख दुश्मन को भी मत देना। जहां हम लोग गये थे वहां शान्तिपुर का हमारा नायब गुमाश्ता मौजूद था। मेरी ऐसी दुर्दशा देख वह फूट फूट कर रोने लगा। उसने केलों का एक गुच्छा मेरी नज़र किया। उसमें से आधा, रास्ते में, मेरी गारद ने लूट खाया।

हम लोग फिर रवाना हुए। ज़मींदार ने वादा किया था कि नावें फ़ौरनही आवेंगी। देखते देखते आँखें फूट गईं, पर एक भी नाव नहीं आई। तब लाचार होकर मछली मारने की एक डोंगी में हम चारों लाई गये। हमारे साथ गारद के कुल दो आदमी रहे। अधिक रहने से डोंगी के डूबने का डर था। इस दिन जून की आख़िरी तारीख़ थी। इस डोंगी में हम लोगों को जो बाँस का बिछौना मिला वह पहले से कुछ नरम था; परन्तु जगह बहुतही कम थी। यहां तक कम कि हम लोग अच्छी तरह हिल न सकते थे। हिलने से हमारी बेड़ियां हमारे फोड़ों को फोड़ने लगती थीं। तकलीफ़ सख़्त थी। यहां से सात दिन में हम लोग मुरशिदाबाद पहुँचे। रास्ते में ख़ूब पानी बरसा; कभी कभी धूप भी बहुत तेज़ हुई। हम लोगों को पानी भी सिर पर लेना पड़ा और धूप भी। इनसे रक्षा पाने का कोई उपाय न था। इस सफ़र में हम लोगों को सुख भी मिला। सुख क्या, उस हालत में, नियामत कहना चाहिए। हमारी गारद के एक आदमी की कृपा से, हमको, पीछे से, कभी कभी, दो चार केले, प्याज़, चबेना, गुड़ और करैले मिलते थे। उनके साथ हमारा भात मज़े में गले से नीचे उतर जाता था। वे हमारे लिए बहुत लज़ीज़ चीज़ें थीं।

७ जुलाई को हम लोग क़ासिमबाज़ार पहुंचे। वहां फ़्रांसवालों की कोठी थी। ला साहब उसके एजण्ट थे। उनको मैंने एक चिट्ठी भेजी। ला साहब उसे पाकर फ़ौरन मेरे पास आये और चिट्ठी ले जानेवाले गारद के आदमी को उन्होंने इनाम दिया। उन्होंने हम पर बड़ी कृपा की; ख़ूब सहानुभूति दिखलाई; और देर तक दुख सुख की बातें कीं। कुछ देर के लिए उन्होंने हमको उतरवाना चाहा, और इनाम भी ख़ूब देने का वादा किया। पर गारद ने यह बात क़बूल न की। उसने कहा कि ज़मीन पर उतारने से उसका सिर न रहैगा। अन्त में कपड़े लत्ते, खाने का सामान, और कुछ रुपया देकर ला साहब बिदा हुए। हम लोगों ने उनकी कोठी के पासवाले नदी के किनारे को, धन्यवाद देते और कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, छोड़ा।

अङ्गरेज़ी खाने की चीज़ों को देख कर हमसे रहा न गया। हम लोगों ने ख़ूब खाया। फल भी इसका शीघ्रही मिला। सबने कुछ न कुछ तकलीफ़ उठाई। मेरी दाहनी टाँग और जाँघ में सूजन आ गई। क़ासिमबाज़ार वाली अङ्गरेज़ी कोठी के पास से जब हम लोग गुज़रे तब मन की अजब हालत हो गई। चेहरों पर उदासी छा गई दुःख की वेदना बढ़ गई। ७ जुलाई को शाम को ४ बजे हम मुरशिदाबाद पहुंचे और एक खुले हुए अस्तबल में रख दिये गये। यह अस्तबल शहर में नवाब के महलों के पासही था। नाव से इस अस्तबल को लाये जाने में मुझे अपार दुःख हुआ। अपमान और मर्मकृन्तक वेदना से विवश होकर मेरी आँखों से आँसू टप टप गिरने लगे। हा, मैं एक भारी मुजरिम की तरह लाया गया। और शहरवालों ने यह तमाशा देखा! इस अपमान, इस विपदा, इस

सङ्कट को मेरी आत्मा न बरदाश्त कर सकी। फोड़ों में दर्द भी बढ़ा और टाँग की सूजन भी अधिक हो गई। इस क्लेश-परम्परा ने मेरे धैर्य्य को जड़ से नाश कर दिया।

इस अस्तबल में एक तरफ़ मुसल्मानों का पहरा खड़ा हुआ और दूसरी तरफ़ हिन्दुओं का। नवाब के मुरशिदाबाद लौटने तक हम को इस महा घृणित जगह में पड़े रहने का हुक्म हुआ। मैं अपनी मुसीबतों का कहां तक वर्णन करूं। दूर दूर से लोग हमको देखने आते थे और सुबह से शाम तक इतनी भीड़ रहती थी कि हम लोग दुबारा गला घुट कर मरने से बहुत ही बचे। यहां पहुंचने पर मुझे ज्वर आया। दो दिन में वह उतरा। तब मेरी टाँग और जाँघ की सूजन बढ़ी और धीरे धीरे उसने गठिया का रूप धारण किया। मैं और भी विपत्ति में फँसा। मैं क्या कहूं, तुम ख़ुद ही समझ देखो कि मेरी बेड़ियों ने इस नये अभ्यागत की कैसी ख़ातिरदारी की! हज़ार प्रार्थना करने और गिड़गिड़ाने पर भी मेरी वह बिचारी टाँग बेड़ी से वियुक्त न की गई। सुख और सन्तोष की इतनी बात यहां अवश्य हुई कि डच और फ़रासीसियों की जो कोठियां क़ासिमबाज़ार में थीं, उनके एजण्टों ने हमारी बड़ी मदद की। हमारी रिहाई के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। हमारे खाने पीने का सामान भी वही लोग भेजते रहे; और हमसे मिलने और हमको धैर्य देने के लिए वे रोज़ आते भी रहे। उनकी मेहरबानी को हम लोग आमरण कदापि नहीं भूल सकते।

आरमीनिया के व्यापारियों ने भी हमारे साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। हेस्टिंग्ज़ और चेम्बर्स के हम लोग बहुत ही कृतज्ञ हैं। फ़रासीसी और डच लोगों की कोठियों के अधिकारियों की ज़मानत पर आरमीनिया के ये व्यापारी छोड़ दिये गये थे। परन्तु हमारे दुर्दैव से, हमारे लिए इनकी ज़मानत मंज़ूर नहीं हुई।

११ जुलाई को नवाब सिराजुद्दौला मुरशिदाबाद वापस आया। उसके साथ बन्दूसिंह नामक उसका एक कामदार भी आया। उसके आने पर हम लोग एक छकड़े में उसीके घर पहुँचाये गये। मैं ज़मीन पर पैर नहीं रख सकता था; इस लिए छकड़े में लादा गया। वहां हमने सुना कि लौटते समय हुगली में नवाब ने हम लोगों को याद किया था, और यह सुनकर वह नाराज़ हुआ था कि क्यों हम लोग इतना जल्द मुरशिदाबाद भेजे गये। उसने वहां पर वाट्स और कालेट आदि साहबों को रिहाई भी दे दी थी। इससे सूचित हुआ कि उस की इच्छा हम लोगों को भी छोड़ देने की थी। यह समाचार हमारे लिए बहुत ही आनन्ददायक था।

बन्दूसिंह के यहां भी हम लोग एक खुले बँगले में रक्खे गये। परन्तु यहां भीड़ से हम लोग बचे। इसलिए ताज़ी हवा से तबीयत को कुछ फ़रहत हुई। बन्दूसिंह का बर्ताव हमारे साथ अच्छा था। वह रोज़ यह कह कर धीरज देता था कि हम लोग शीघ्र ही छोड़ दिये जायँगे। १५ जुलाई को हम लोग हुक्म सुनने के लिए क़िले में पहुंचाये गये। एक घण्टे तक फाटक के बाहर धूप में हम सब खड़े रहे। यहां हमने देखा कि नवाब के कितने ही अमीर और अमला, जो एक घण्टा पहले, बड़ी शान व शौकत से क़िले के भीतर गये थे, बड़ी बेइज़्ज़ती के साथ निकाले गये, और अपने काम से बरख़ास्त भी कर दिये गये। हमारे लिए हुक्म हुआ कि आज हम लोग नवाब के सामने पेश न किये जायंगे। अतएव हमको फिर उसी पहले अस्तबल में आना पड़ा; और एक रात फिर वहां बितानी पड़ी। यह अस्तबल क़िले के पास था। हम वहां इस लिए रक्खे गये कि ज़रूरत पड़ने पर शीघ्रही हम नवाब के सामने हाज़िर किये जायँ।

१६ जुलाई को सबेरे एक बुढ़िया हमारी गारद के पास आई और कोई आध घण्टा बातचीत करती रही। यह बुढ़िया नवाब अलीवर्दीख़ां की बेगम, अर्थात् सिराजुद्दौला की दादी, की लौंडी थी। जब वह चली गई तब हमने गारद के सिपाहियों से उसके आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि

कल रात को एक दावत थी। उसमें बेगम ने हम लोगों की बहुत सिफ़ारिश की, और नवाब सिराजुद्दौला से कहा, कि वह हमको छोड़ दे। नवाब ने भी छोड़ देने का वादा कर लिया है। कहने की ज़रूरत नहीं, यह सुनकर हम लोगों के आनन्द की सीमा न रही। परन्तु यह आनन्द थोड़ी ही देर के लिए था। क्योंकि दोपहर को इस सुखाशा पर पाला पड़ गया। हमने सुना कि नवाब के दस्तख़तों के लिए एक हुक्मनामा तैयार किया गया है, जिसके मुताबिक़, बेड़ियों से लदे हुए हम लोग, अलीनगर के गवर्नर राजा मनिकचन्द के पास भेज दिये जावेंगे। कलकत्ते को लेकर सिराजुद्दौला ने उसका नाम अलीनगर रक्खा था।

यह ख़बर नहीं थी, हमारे ऊपर वज्रपात था। मानिकचन्द को हम लोग ख़ूब जानते थे। उसके बराबर निर्दयी, मक्कार और लुटेरा शायद ही कोई दूसरा हो। उसके हाथ से जीते बचना हम लोगों ने असम्भव समझा। इसलिए जीवन से हम लोग निराश हो गये। आशा ही सब दुःखों का मूल है। निराश होने पर दुःख अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। हम लोग इस निराशा के कारण, बेफ़िकर से हो गये। और दोपहर को खाना खा कर सो गये। उस दिन की सी नींद, मैं सच कहता हूं, मुझे पहले कभी नहीं आई थी।

पाँच बजे गारद ने हमको जगाया और कहा कि, थोड़ी देर में, नवाब मोतीझील नामक अपने महल को जायगा; और अस्तबल के सामने से होकर निकलैगा। तैयार होकर हमने गारद से कहा कि सामने का रास्ता वह साफ़ रक्खें, जिसमें हम लोग नवाब को देख सकें। नवाब यथासमय आया। हम लोगों ने झुककर सलाम किया। जब वह बिलकुल हमारे सामने आ गया तब उसने अपनी पालकी खड़ी करा दी और हमको अपने पास बुलाया। हम लोग फ़ौरन आगे बढ़े, और नज़दीक जाकर मैंने संक्षिप्त वाक्यों में अपनी दुर्दशा का वर्णन किया; और रिहाई के लिए प्रार्थना की। हमारी उस हृदयविदारी और करुणाजनक हालत पर, हैवानों का सा कलेजा रखनेवाले उस नवाब को भी दया आई। वह कुछ बोला तो नहीं, परन्तु यह बात उसके चेहरे पर झलक आई। अपने दो अफ़सरों को उसने हुक्म दिया कि हमारी बेड़ियां काट दी जायँ; कोई हमारा अपमान न करने पावै; और जहां हम चाहें वहां पहुँचा दिये जायँ। यह हुक्म देकर वह चलता हुआ। ज्यों ही हमारी बेड़ियां काटी गईं, हम लोग नाव पर सवार होकर क़ासिमबाज़ार पहुंचे। वहां डच लोगों की कोठी में हमारी बड़ी ख़ातिरदारी हुई। उन लोगों ने हमको बहुत अच्छी तरह रक्खा। कोई तकलीफ़ नहीं होने पाई।

दोपहर को जो यह ख़बर उड़ी थी कि हम लोग कलकत्ते भेजे जायँगे, उसका कारण था। लोगों ने नवाब को सुझाया था कि मेरे पास बहुत रुपया है। इससे जो मैं मानिकचन्द के पास भेज दिया जाऊं तो वह, किसी न किसी ढंग से, यह रुपया ज़रूर मुझ से ऐंठ लेगा। मगर नवाब ने इस सलाह को पसन्द न किया। उसने कहा कि मुझे काफ़ी तकलीफ़ मिल चुकी; यदि मेरे पास कुछ रुपया अभी बाक़ी है तो वह मैं अपने पास ख़ुशी से रक्खे रहूं। इस मेहरबानी का कारण चाहै अलीवरदीख़ां की बेगम हो; चाहै नवाब। परन्तु मैं समझता हूं कि हमारी रिहाई उन दोनों हीं की कृपा का फल था।

मेरे दोस्त, इस प्रकार, अन्त को मैंने रिहाई पाई। जब से मैंने उस नरनाशी ब्लैक-होल में पैर रक्खा, तब से, इस समय तक, मैंने तुमको अपनी मर्मभेदक कहानी सुना कर, ज़रूर तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचाई होगी। अतएव मैं तुमसे क्षमा माँगता हूं और अधिक न लिख कर क़लम को अब यहीं नीचे रखता हूं।

राजा युधिष्ठिर का काल।

सरस्वती की नवम्बर १९०४ की संख्या में प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास के लेखक कोई चिट्टूर निवासी वकील, वी. गोपाल ऐयर, बी. ए., बी. एल. के विषय में, तथा उनके इतिहास में दिये हुए पाण्डवों के काल के विषय में, कुछ लिखा गया है। वकील साहब ने जो यह सिद्ध करने का यत्न किया है, कि युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० (तीन हज़ार) वर्ष के लगभग हुए, उसके विषय में, हम कुछ लिखा चाहते हैं। उसीसे वकील साहब को प्राचीनज्ञता का कुछ परिचय हो जायगा।

प्रथम तो, सबसे बड़े आश्चर्य और खेद की बात यह है, कि बहुतेरे प्राचीन विषयों पर विचार करने वाले, और लिखनेवाले, विशेषतः यूरोपियन लोग, इस बात का हमेशा यत्न करते हैं कि भारतवर्ष की प्राचीन बातें, जहां तक हो सके, खींच खांच कर, ईसा के कुछ ही पहले बतलाई जायँ। किसी समय में हमें हमारे इतिहास के पाठक लोग यह सिखाते थे कि वेदों को प्रणीत हुए ३००० वर्ष से अधिक हुए। अब यह काल आया है कि युधिष्ठिर को हुए लगभग ३००० वर्ष हुए। ऐसा हमारे भारत-वासी प्राचीनतत्वज्ञ कहने लगे हैं। कदाचित् और अधिक खोज से यह होगा कि प्राचीन बातों को अर्वाचीनत्व देने का यत्न, जो अत्रस्थ और परस्थ विद्वान लोग कर रहे हैं, वह निष्फल प्रतीत होगा। आज, हम, यदि यह कह दें, कि युधिष्ठिर को हुए लगभग ७ हज़ार वर्ष हो गये तो हमारे प्राचीनतत्व-कोविद लोग एकबार ही घबरा उठेंगे; और उसे असम्भव सा समझ मेटने का यत्न करेंगे। क्योंकि हमारे भारत की प्राचीनता को देख उनका चित्त उद्विग्न सा होता है। और वे यह नहीं सह सकते कि भारतवर्ष इतने प्राचीन काल में उन्नत अवस्था में था। परन्तु हम इस बात की परवा नहीं करते, क्योंकि, हम सच्चे भारतवासी हैं। हमारी प्राचीनता में कुछ भी सन्देह नहीं। और जहां हमारी उन्नति में हज़ारों वर्ष की गणना एक साधारण बात है, वहां हमें परदेशियों की शताब्दियों की गणना पर क्योंकर विश्वास करना चाहिए? एक प्राचीन तत्ववेत्ता कहते हैं कि विक्रमादित्य कोई था ही नहीं! वाह! इससे यह सूचित हुआ कि भारत-वासी लोग निरे मूर्ख थे, जो फ़र्ज़ी संवत् बना लिया करते थे! कहिए, अब, हम, जो इस भारतवर्ष के पुत्र हैं, क्योंकर इस बात को सच मानें कि विक्रमादित्य न कभी यहां जन्मा, न रहा? अस्तु। हमें खेद है कि हमारे अङ्गरेज़ी पढ़े लोग, जो पुरानी बातों की विचारणा करते हैं, विदेशियों के मतों पर और लेखों पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं। इसीसे स्वयं भी वे उन्हींके समान प्रलाप करने के अधिकारी होते हैं।

ग्वालियर में, कुछ वर्ष पहिले, एक बड़े विद्वान पण्डित हो गये हैं। उनका नाम विसाजी रघुनाथ लेले था। पण्डितजी सारे महाराष्ट्र देश में सायन-वाद के उत्पादक के नाम से बहुत प्रसिद्ध थे। वे सायनमताभिमानी ही नहीं, परन्तु उसके प्रवर्तक हो गये हैं। वे केवल इस बात को सिद्ध करने के लिए, कि महाभारत के युद्ध के समय सायनपद्धति ही प्रचलित थी, उस युद्धकाल के ग्रह, महाभारत के आंतरीय प्रमाणों द्वारा (Internal evidence) स्पष्ट कर गये हैं। और उसीके सम्बन्ध में महा-भारतीय युद्ध का काल, अर्थात् पाण्डवों का काल भी, वे स्पष्ट कर गये हैं। उसेही हम नीचे देते हैं—

इवल्ली के प्रसिद्ध जैन देवालय के बनाये जाने का काल उस मन्दिर के शिलालेख पर खुदा है। वह काल तीन निराले शब्दों द्वारा स्पष्ट किया गया है जिसमें उसकी गणना में भ्रम, या भूल, न हो। वह लेख इस प्रकार है—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु
३० + ३००० = ३०३०; (७ × १००) = ७०० +

शतष्वब्देषु पंचसु। पंचाशत्सु कलौ काले, षट्सु पंचशतेषु च।
१०० + ५ + ५० = ८५५; ६ × ५०० = ५०६

समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम॥

इसमें तीन निराले कालों से मन्दिर के बनने का काल दिया गया है। पहला भारतीय युद्ध का ३०३०; दूसरा कलि का ८५५; और तीसरा शक जातीय राजाओं का ५०६। इस अनुक्रम से यह बात स्पष्ट होती है कि कलि से २१७५ वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था। अर्थात् वह द्वापर का अन्तिम चरण था।

यह वर्तमान काल तक और भी स्पष्ट करके दिखाया गया है—

युधिष्ठिर का राज्याधिकार

४८	युद्ध						
२१७५	२१२७	कलि					
२५२४	२४७६	३४९	शक नृप				
३०३०	२९८२	८५५	५०६	इवल्ली का देवालय *			
५२१९	५१७१	३०४४	२६९५	२१८९	विक्रम		
५३५४	५३०६	३१७९	२८३०	२३२४	१३५	शालिवाहन	
७१७९	७१३१	५००४	४६५५	४१४९	१९६०	१८२५	वर्तमान

इस कालनिर्णय में पण्डित लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष खर्च किये थे। इस गणित को राव बहादुर प्रो० केरो लक्ष्मण छत्रे ने, जो कि दक्षिण हिन्दुस्तान के बड़े गणितज्ञ थे, अपने प्रतिष्ठापत्र द्वारा ठीक बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि शालिवाहन शक के ५३०६ वर्ष पहले पाण्डव थे। यह प्रतिष्ठापत्र १८८३ ई० का लिखा हुआ है। अर्थात् वर्तमान समय से ५३०६+१८२५=७१३१ वर्ष पहले पाण्डव, और उनमें युधिष्ठिर, प्रतिष्ठित थे। नामी वकील साहब यदि इस शिलालेख की ओर ध्यान दें तो उनकी प्राचीन तत्वदृष्टि के अधिक विस्तृत होने की सम्भावना है।

गणपति जानकीराम दुबे।

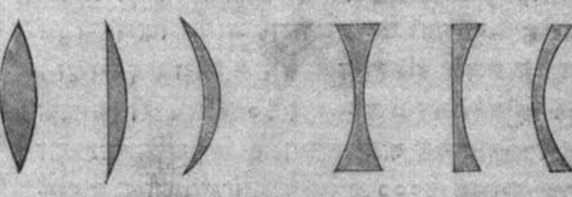
---

* यह देवालय कलि की २७वीं शताब्दि में प्रथमशङ्कराचार्य के समय में बना था।

आँख।

[२]

आलोक की किरण जिस पदार्थ में प्रवेश कर रही है उसकी सतह पर लम्ब खींचा जाय तो तरल पदार्थ में उस किरण का लम्ब के साथ बना हुआ कोण, घने पदार्थ में बने हुए कोण से बड़ा होगा। 'क ख ग' ताल में 'म' मोमबत्ती की किरण जा रही है। वह 'अ' 'इ' स्थानों पर उपर्युक्त नियमानुसार दो बेर मुड़कर 'न' नेत्र में पहुंची। अतएव 'न' नेत्र को, 'म' अपने स्थान में नहीं किन्तु 'न इ'' सिलसिले में 'म'' पर दिखाई देगी। अर्थात् त्रिपार्श्व में देखे जाने से, पदार्थ, उसकी चोटी की तरफ़, किरणों के वक्रीभवन से, बदले हुए दिखाई देते हैं। प्रकाश को दो बेर मोड़ देने का यह गुण, तालों के विषय में जो कुछ कहा जायगा, उसका आधार है।



अ इ उ क ख ग

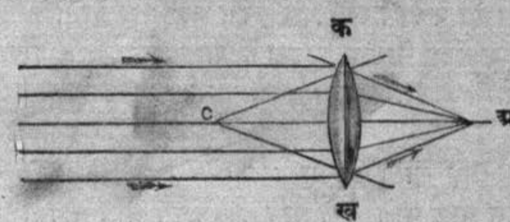
(चित्र ४)

ताल ६ प्रकार के होते हैं और उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। इनके गुणों के विचार के लिए "अ" और "क" का ही विचार बस होगा, क्योंकि उस उस समूह के और और तालों के गुण उनके ही सदृश हैं।

अ	उभयोन्नतोदर	केन्द्राकर्षक
इ	समोन्नतोदर	
उ	मध्यस्थूल अर्धचन्द्र	
क	उभय नतोदर	केन्द्रापसारक
ख	समनतोदर	
ग	मध्यकृश अर्धचन्द्र	

उन्नतोदर ताल—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटें तो जो भूमि दोनों वृत्तों में समान होगी वही उभयोन्नतोदर ताल होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दोनों वृत्तों के केन्द्र, गुलाई के केन्द्र, और उन दोनों केन्द्रों को जोड़नेवाली ताल में होकर जानेवाली रेखा प्रधान धुरी कहलाती है। काचके दोनों किनारों से समान दूरी पर, प्रधान धुरी पर जो बिन्दु हो उसे दर्शन केन्द्र कहना उचित होगा। ऐसी और कोई रेखा जो दर्शनकेन्द्र में होकर जाय, किन्तु गुलाई के केन्द्रों से दूर रहे, उसे गौण धुरी कहेंगे। प्रधान धुरी एक ही होती है; गौण धुरी अनन्त हैं। अनन्त सरल रेखाओं के मिलने से वक्र रेखा वा वृत्त बनता है। अतएव अ इ उ तालों को हम अनन्त त्रिपार्श्वों के, एक के आधार में दूसरे तथा दूसरे के आधार में तीसरे के, जुड़ने से बना हुआ मान सकते हैं। क ख ग तालों को इसके विरुद्ध चोटी की तरफ़ जुड़े हुए मानलें। अब यह समझना कठिन न होगा कि उन्नतोदर ताल केन्द्राकर्षक क्यों होते हैं, और नतोदर केन्द्रापसारी क्यों होते हैं। क्योंकि त्रिपार्श्व में किरणें दो दफ़ा मुड़कर आधार की तरफ़ जाती हैं। उन्नतोदर में जुड़े अनन्त त्रिपार्श्वों का आधार बीच की तरफ़ और नतोदर में ऊपर की तरफ़ होता है। इसी लिए उन्नतोदर में किरणें बीच में आती हैं और नतोदर में ऊपर की ओर उड़ जाती हैं।

(१) मान लीजिए कि किसी उन्नतोदर ताल पर बहुत दूर के पदार्थ की किरणें पड़ रही हैं—इतनी दूर से कि वह एक स्थान से प्रचलित न दिखाई देकर समानान्तर दिखाई देती हों, जैसे सूर्य की किरणें, तो उन किरणों में से जो किरण प्रधान धुरी पर जाती है वह तो मानों समानान्तर ताल में होकर जा रही है और बिना वक्र हुए निकल आती है। इससे कुछ दूर की किरण, नियमानुसार दो दफ़ा मुड़ती है और मध्यकिरण से समानान्तरता नष्ट होने पर उससे मिलती है। उससे अधिक दूर की किरण, अधिक झोंकवाले त्रिपार्श्व में टकराने से, अधिक झोंक खा कर मुड़ती है, क्योंकि ताल की झोंक केन्द्र से ऊपर की तरफ़ बढ़ती जाती है। इसी लिए यह मुड़कर पहली दो किरणों से उसी स्थान पर मिलती है जहां वे मिली थीं। ऐसे ही अधिक अधिक दूर की किरणें, अधिक अधिक झोंक खाकर, प्रधानधुरी के ऊपर, या नीचे, एक बिन्दु 'अ' पर मिलती हैं।



(चित्र ५)

क ख ताल। अ अंशुनाभि

यों समानान्तर किरणजाल केन्द्राकृष्ट किरणजाल बनकर एक बिन्दुपर मिलता है। इस बिन्दु का नाम अंशुनाभि है। वास्तव में यह सूर्यका चित्र है। उन्नतोदर ताल ही "आतिशी शीशा" कहाता है। इस नाभि में आलोक ही नहीं, उष्णता भी इकट्ठी होकर जलाने का काम दे सकती है। ताल पर जिस तरफ़ से किरणें आती हैं उसके दूसरी तरफ़ यह बनता है। जितनी काँच की गुलाई अधिक होगी, उतनी ही यह नाभि छोटी और उष्ण होगी। यह नाभि सच्ची है अर्थात् तालके पीछे कपड़ा या काग़ज़ रखने से दिखाई देगी।

(२) अब मान लीजिए कि आलोक का पदार्थ (मोमबत्ती) अधिक समीप आ गया है; किन्तु अंशुनाभि से दूर है। समानान्तर किरणों की अपेक्षा इनमें एक दूसरे से कम अन्तर है, इसी लिए ताल के दूसरी ओर निकल कर यह उतनी जल्दी केन्द्राकृष्ट नहीं होतीं, किन्तु अंशुनाभि से हट कर अगाड़ी मिलती हैं। (असमाप्त)

पुस्तक परीक्षा।

रोमन-शिक्षा। पं० साधुशरण पांडे, हिन्दू कालेज, काशी, कृत। दाम आध आना। रोमन लिखना सीखने के लिए यह पुस्तक बनाई गई है।

❁

लक्ष्मी-उपदेश-लहरी। मासिक पुस्तक है। औरंगाबाद, गया, से निकलती है। वार्षिक मूल्य १) है। दो वर्ष से जारी है। गद्य और पद्य दोनों रहते हैं। बाबू गोरेलाल इसके सम्पादक हैं। इसमें उन्नति के लिए अभी बहुत जगह है।

❁

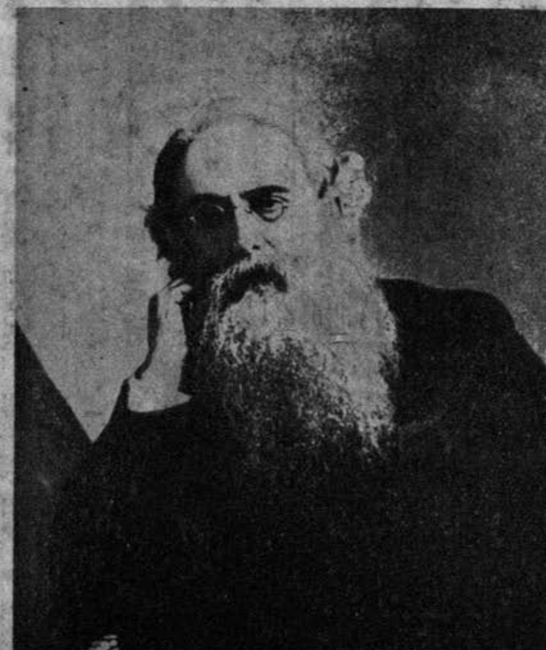
शिक्षालता। ७४ पृष्ठ को पद्यमय पुस्तक है। दाम आठ आने। इसे बाबू रामभजन चौबे ने बनाया है और शिवहर के हेड मास्टर बाबू रामदास राय ने प्रकाशित किया है। अङ्गरेज़ी कवियों ने शिक्षा और उपदेश पर जो अच्छी अच्छी कवितायें लिखी हैं उन्होंका इसमें अनुवाद है। कोई कोई कविता व्रजभाषा में है और कोई कोई साधारण बोलचाल की भाषा में। उद्देश्य और विषय इसके दोनों अच्छे हैं। परन्तु इसको कविता शायद किसी किसो को कम पसन्द आवे।

❁

लिपिबोध। कानपुर के पास एक गाँव मसवानपुर है। वहां पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट रहते हैं। आपने हिन्दी-लिपि में जो कुशलता प्राप्त की है उसे पाने का आज तक किसी को सौभाग्य नहीं हुआ। लिपि-सम्बन्धिनी एक छोटी सी पुस्तक आपने इसके पहले भी प्रकाशित की थी। परन्तु यह लिपिबोध उससे कहीं बढ़कर है। इस पुस्तक के दो खण्ड हैं। एक आकृति-खण्ड; दूसरा विवरण खण्ड। दोनों के दाम १।=) होंगे। परन्तु विवरण खण्ड अभी नहीं छपा। केवल आकृति खण्ड छपा है जिसके दाम ॥।=) हैं। इस खण्ड में ५०० के ऊपर अक्षरों की आकृतियां हैं। अक्षर, अक्षरांश, मात्रा और अङ्क इत्यादि नाना प्रकार से लिख कर दिखलाये गये हैं। उन सब के पैमाने भी दिये हुए हैं। कोई कोई अक्षर खूब बेलबूटेदार बनाया गया है। अक्षर क्या हैं एक एक चित्र हैं। जो लोग अङ्गरेज़ी अक्षरों के प्रकार और सौन्दर्य पर मुग्ध हैं उनको जानना चाहिए कि हिन्दी के अक्षर, इन बातों में, अङ्गरेज़ी के अक्षरों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। हां, हिन्दी जाननेवालों में गुणग्राहकता की कमी है। इसी लिए हिन्दी की लिपि-विद्या का प्रचार नहीं होता। हिन्दी के हितैषियों को चाहिए कि भट्टजी के आकृति-खण्ड को लेकर वे उनके उत्साह को बढ़ावें जिसमें वे विवरण खण्ड को भी शीघ्र ही प्रकाशित कर सकें। कई राजा, रईस और सभा-समाजों ने भट्टजी को सहायता देकर अपनी गुणग्राहकता दिखलाई भी है।

❁

दरिद्रता से श्रेय। ऐलन साहब एक विद्वान् अङ्गरेज़ हो गये हैं। वे बहुत बड़े लेखक थे। उन्होंने अङ्गरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है "फ्राम पावर्टी टु पावर"। उसी के पहले भाग का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसके अनुवादक लाला मुंशीलाल, एम० ए० हैं। आप गवर्नमेण्ट से पेंशन पाते हैं और लाहौर में रहते हैं। पुस्तक का मूल्य ।) है। इसमें ऐलन साहब के—दुःख का उपयोग, विचार-शक्ति, आरोग्य-सिद्धि, परमानन्द और ऐश्वर्य्य का अनुभव आदि कई निबन्धों का अनुवाद है। सब निबन्ध पढ़ने और विचार करने लायक हैं। कोई कोई बातें तो इसमें बहुत ही अच्छी कही गई हैं। एक जगह पर लिखा है—"जो मनुष्य अपनी वर्तमान दशा पर सन्तुष्ट नहीं है वह दरिद्र है और जो मनुष्य अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति पर सन्तुष्ट है वह वस्तुतः धनाढ्य है। और जो मनुष्य थोड़ा सा धन पास होने पर भी दाता और उदार है और उसे औरों के लिए व्यय करता है, वह और भी अधिक धनाढ्य है"। कहिए, कैसे अच्छे विचार हैं। पुस्तक उपादेय है। यदि इसकी भाषा कुछ अधिक सरल होती तो और भी उत्तम होता।



कर्नल आल्काट



मैडम ब्लावेट्स्को



रम्भा
[राजा रविवर्म्मा कृत]

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] मार्च, १९०५ [संख्या ३

विविध विषय।

एक ख़बर सुनकर तबीयत बहुत ही ख़ुश हुई। बम्बई की तरफ़ कई बड़े बड़े विद्वानों ने मिलकर एक वैज्ञानिक-कोश बनाने का निश्चय किया है। यह कोश दो चार में नहीं, किन्तु चौदह भागों में ख़तम होगा। कोई शास्त्र, कोई विज्ञान, इस कोश से बाहर न रक्खा जायगा। इसमें सबके पारिभाषिक शब्दों का अर्थ मराठी में दिया जायगा। इस कोश के बनने में १५ हज़ार रुपये से कम न ख़र्च होंगे। परन्तु यह पुस्तक भी अनमोल होगी। इसके प्रकाशित हो जाने पर इस से प्रायः सारे भारतवर्ष को फ़ायदा पहुंचैगा। जो लोग देवनागरी अक्षर पढ़ सकते हैं—चाहे वे बङ्गाली हों, चाहे पञ्जाबी और चाहे गुजराती—वे सब, अब, अङ्गरेज़ी वैज्ञानिक पुस्तकों का अपनी अपनी भाषा में अच्छी तरह अनुवाद कर सकेंगे। इस कोश में अङ्गरेज़ी शब्दों के समानार्थक शब्द यद्यपि मराठी में होंगे, तथापि उनमें से तीन चौथाई से भी अधिक संस्कृत के शब्द रहेंगे। अतएव यह कोश संयुक्तप्रान्तवालों के भी काम का होगा; और बहुत काम का होगा। इस कोश के दो भाग छप भी चुके हैं। उनके सामने आज तक छपे हुए हिन्दी और बँगला आदि भाषाओं के ऐसे कोश और ऐसी परिभाषायें बिलकुल ही तुच्छ हैं।

***

जापान में एक हज़ार से अधिक समाचारपत्र और सामयिक पुस्तकें निकलती हैं। टोकियो में सर्वसाधारण के लिए जो पुस्तकालय है उसमें पाँच लाख पुस्तकें हैं। उनमें से एक हज़ार योरप की भाषाओं में हैं। जब जापानी लोग किसी दूसरी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद करते हैं तब वे मनमानी स्वाधीनता दिखाते हैं। वे शाब्दिक अनुवाद की बिलकुल परवा नहीं करते। केवल मतलब की तरफ़ उनका ध्यान रहता है। उसीको वे अपने तौर पर ज़ाहिर करते हैं। बहुत सी बातों को बदल कर वे उन्हें अपने देश की चाल ढाल के अनुसार कर देते हैं। विदेशी नामों को वे बदल डालते हैं और उनकी जगह पर वे जापानी नाम रख देते हैं।

योरप की भाषाओं के किसी किसी नाटक का अनुवाद उन्होंने इतना विभिन्न किया है कि उसके अभिनय के समय यदि मूल नाटककार हाज़िर हो तो वह शायद ही इस बात को जान सके कि वह जापानी अभिनय उसीके रूपक की छाया है।

***

इलाहाबाद के म्योर कालेज में एक ऐतिहासिक समाज स्थापित हुआ है। कुछ दिन हुए उसका नया अधिवेशन था। उसमें अध्यापक थीबो ने एक व्याख्यान इस विषय पर दिया कि प्राचीन इतिहास के जानने के लिए कितनी सामग्री है और वह कहां कहां से किस तरह मिल सकती है। श्रोता बहुत से विद्यार्थी थे। व्याख्याता ने ईजिप्ट, आसीरिया, बाबिलोनिया और चीन के पुराने इतिहास के विषय में बहुत कुछ कहा। इस देश के पुरातन इतिहास के विषय में आपने कहा कि यद्यपि इस बात की बहुत कुछ गवाही मिलती है कि हिन्दुस्तानी सभ्यता भी पुरानी है, तथापि हिन्दुओं ने ऐतिहासिक बातों की तरफ़ कम ध्यान दिया है। यह अफ़सोस की बात है। साहब ने सूचना दी कि हिन्दुस्तानियों में से कोई विद्वान्, जो थोड़े बहुत प्रमाण मिलते हैं उनके आधार पर, एक पुराना इतिहास लिखने का यत्न करे तो अच्छा हो। आपने यह भी कहा कि किसी किसी हिन्दुस्तानी का यह ख़याल है कि योरपवाले जान बूझ कर इस देश की सभ्यता की प्राचीनता को नहीं स्वीकार करते और इस बात को भी वे नहीं मानते कि किसी समय वह सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इस ख़याल को थीबो साहब ने बिलकुल ही ग़लत बताया। उन्होंने कहा, ऐसा समझना भ्रम है। हिन्दुस्तान की सभ्यता के विषय में जितनी सामग्री इस समय प्राप्त है, यदि कोई उससे अधिक ढूंढ़ निकाले और उससे यह बात सिद्ध कर दे कि वह सभ्यता जितनी पुरानी समझी जाती है उससे अधिक पुरानी है, तो योरप के विद्वान् प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार कर लेंगे। इस बात को मान लेने में उन्हें जो ख़ुशी होगी वह और किसी बात को मान लेने में न होगी।

***

कलकत्ते में एक संस्कृत कालेज है। वह बहुत पुराना और प्रतिष्ठित कालेज है। गत दिसम्बर में विद्यार्थियों को इनाम बांटा गया था। इस निमित्त एक सभा हुई थी। सभापति थे डाक्टर ब्लोच। डाक्टर साहब बङ्गाल गवर्नमेंट के पुरातत्ववेत्ता हैं और एशियाटिक सोसायटी की भाषा-विज्ञान-शाखा के मन्त्री हैं। आपने अपनी वक्तृता में यह बतलाया कि योरप में लोग संस्कृत किस तरह सीखते हैं।

***

आपके कथन का आशय यह है कि योरप में बहुत कम लोग संस्कृत सीखने की परवा करते हैं। जरमनी में २१ विश्वविद्यालय हैं। उन सब में संस्कृत पढ़ाने का प्रबन्ध ज़रूर है; परन्तु बहुत कम विद्यार्थी संस्कृत पर व्याख्यान सुनने जाते हैं। फिर किस लिये गवर्नमेंट इतने संस्कृत-अध्यापक रखती है? नई नई बातों की खोज के लिए; विद्या से जो एक अलौकिक आनन्द मिलता है उसकी प्राप्ति को सुलभ करने के लिए; भिन्न भिन्न भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध को जानने के लिए। पाणिनि के बिना बॉप (एक जर्मन विद्वान्) को कौन जानता? संस्कृत के अद्भुत व्याकरण को न जानने से भारतवर्ष और योरप की भाषाओं का सम्बन्ध कैसे मालूम होता? इसीसे योरप के विद्वान् पुरानी संस्कृत—वैदिक संस्कृत—की तरफ़ विशेष ध्यान देते हैं। कल्पना कीजिए कि योरप का कोई विद्यार्थी संस्कृत सीखना चाहता है तो वह रघुवंश समाप्त होतेही ऋग्वेद आरम्भ कर देगा, क्योंकि भाषाओं के तारतम्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैदिक संस्कृत की ही अधिक आवश्यकता है।

***

वेद पढ़ने का एक और भी कारण है। साहित्य की, और इतिहास की भी, दृष्टि में वेद सबसे पुरानी पुस्तक है। उसके परिशीलन से उन लोगों के सम्बन्ध

की बहुत सी बातें मालूम होती हैं जो भारतवर्ष और योरप के वर्तमान निवासियों के पूर्वज थे। वेद के बाद का भी संस्कृत-साहित्य कोई कोई पढ़ते हैं; परन्तु लोगों का चित्त पुराने ग्रन्थों ही की तरफ़ अधिक खिंचता है। जिस तरह वनस्पति और जीवधारियों से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र के पढ़ने और विचार करने से आनन्द मिलता है उसी तरह इस बात का पता लगाने से भी आनन्द मिलता है कि हमारे पूर्व पुरुष पहले कहां रहते थे, किस तरह रहते थे, क्या खाते पीते थे और क्यों, तथा कब, वे अपनी पुरानी जगहों को छोड़ कर नई जगहों में जा रहे थे। इसी का नाम ऐतिहासिक खोज है। इसी में योरप के विद्वान् अधिक श्रम करते हैं। यह एक ऐसा विषय है कि इसकी तरफ़ इस देश की पुरानी चाल के पण्डितों का बिलकुलही ध्यान नहीं है। क्या ही अच्छी बात हो यदि इस कालेज के, और हिन्दुस्तान के दूसरे कालेजों के भी, संस्कृत के विद्यार्थियों में इस प्रकार की खोजक वृत्ति जागृत हो जाय। यदि एक दो विद्यार्थी इस काम के लिए यहां से विलायत भेजे जांय और वहां वे योरप के संस्कृतज्ञ विद्वानों के पास रहकर पुरातत्व के खोजने के काम में सहायता दें तो बड़े आनन्द की बात हो।

***

हिन्दुस्तान के पुराने इतिहास का पता लगाने के लिए पुराने ताम्रपत्र और शिलालेखों का पढ़ना बहुत ज़रूरी बात है। आज तक इस तरह के जितने लेखों का पता लगा है उनकी नक़लें उन्हीं अक्षरों में छप गई हैं। संस्कृत के नये विद्वानों को चाहिए कि ध्यानपूर्वक वे उनको देखें, पढ़ें और विचार करें, जिसमें सब प्रकार के पुराने अक्षरों को वे पढ़ने और उनका मतलब समझने लगें। उन्हें चाहिए कि पहले वे कम पुराने लेखों को पढ़ें; क्योंकि उनकी लिपि वर्तमान देवनागरी लिपि से बहुत कम भिन्नता रखती है। फिर, धीरे धीरे, उन्हें और पुराने लेख पढ़कर सब प्रकार के प्राचीन लेखों के पढ़ने का अभ्यास कर लेना चाहिए। उनको पाली और प्राकृत भाषा भी सीखनी चाहिए। पाली और प्राकृत के कोश और व्याकरण अङ्गरेज़ी में छप गये हैं। अतएव बहुत कम परिश्रम से ये विद्यायें सीखी जा सकती हैं। बस, पुरातत्वज्ञ होने के लिए यही सामग्री दरकार होती है।

***

इस संख्या में निराशबन्धु औषधालय का एक विज्ञापन छपा है। उसे पढ़िए। इस औषधालय की कई औषधियों से हमने लाभ उठाया है।

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री।

आज बिहार की हिन्दी-साहित्य-वाटिका श्री-विहीन क्यों देख पड़ती है? वह साहित्य-वाटिका जिसमें अनेक गुल खिले थे, आज पुष्प-शून्य क्यों हो रही है? इस रमणीय वाटिका के सुन्दर नव-वृक्षों के पत्र-पल्लव किधर चले गये? शाखा प्रशाखायें इस प्रकार विशीर्ण क्यों पड़ी हैं? आज यह वाटिका भयावनी क्यों हो रही है? इस साहित्य-वाटिका को सुशोभित करनेवाला, नेत्रों को जुड़ानेवाला, हरित लताओं से परिपूर्ण तथा पुष्प-रत्नों से भूषित हिन्दी-साहित्य-वृक्ष मृतवत् क्यों खड़ा है?

दो चार दिन भी नहीं हुए कि इस साहित्य-वाटिका की क्यारियों को उजाड़ कर पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बाबू साहिबप्रसादसिंह, महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह, पण्डित गोपीनाथ कुमर आदि चल ही चुके थे कि आज, हा काल! जो दो एक पुष्प-रत्न रह गये थे उनको भी तू ने नाश कर दिया। साहित्य-वाटिका अब सूनी पड़ी है। जो वाटिका कोकिलों के मधुर स्वरों से गूँज रही थी, आज कौओं के क्रूर और अश्रवणीय कलरवों से श्मशान हो रही है।

प्यारे पाठको! हिन्दी के परम भक्त, अनन्य-प्रेमी, सच्चे दास, योग्य सुपुत्र, जिन्होंने अपनी माता हिन्दी की सेवा अनेक विपत्तियां झेलने पर भी अपने अन्तिम दिन तक अचल प्रेम और निःस्वार्थ

भाव से की—वही बाबू अयोध्याप्रसाद, वही हिन्दी के रत्न, वही आपके मित्र, अब इस असार संसार में नहीं हैं! जिन्हों ने हिन्दी की उन्नति के हेतु अपना सर्व्वस्व—तन, मन और धन—अर्पण कर दिया था; जिन्होंने अनेक कटु-वचन सुनने पर भी अपने जीवन के प्रधान उद्देश्य खड़ी बोली में पद्य बनाने के आन्दोलन को नहीं छोड़ा; जिन्होंने सहस्रों रुपये ख़र्च हो जाने पर भी हिन्दी की उन्नति के हेतु किसी कार्य्य से मुँह नहीं मोड़ा; वही बाबू अयोध्याप्रसाद आज हिन्दी को अनाथ कर, खड़ी बोली के पद्य को अपने मित्रों की सहायता तथा सहानुभूति पर छोड़कर, अपने मित्रों को शोक-सागर में डुबोकर, ४ जनवरी, १९०५, को बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, और व्यासजी आदि मित्रों की मण्डली में जा मिले। हाय, हाय, इसके थोड़े ही दिन बाद विहारबन्धु के पुराने सम्पादक पण्डित केशवराम भट्ट भी विहार की साहित्य-वाटिका पर और भी अधिक कुठाराघात करके बाबू अयोध्याप्रसाद के अनुगामी हो गये।

बाबू साहब की उम्र ४६।४७ वर्ष की थी। आपकी अन्तिम यात्रा के पूर्व ही आपकी धर्म्मपत्नी को प्लेग उठा ले गया था। आप भी अपनी सहधर्म्मिणी के पीछे चल दिये। ईश्वर दोनों प्राणियों की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

बाबू साहब के पिता का नाम बाबू जगजीवन लाल था। बाबू अयोध्याप्रसाद अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। प्रथम पुत्र का नाम बाबू महावीरप्रसाद था और तृतीय का बाबू द्वारिकाप्रसाद है। इन लोगों का निवास-स्थान पहले ज़िला बलिया के सिकन्दरपुर में था। मुज़फ़्फ़रपुर में बाबू जगजीवन लाल ने आकर वास किया था। वे धनी आदमी नहीं थे। किन्तु पुस्तकें बेचने की एक दूकान उनकी थी जिसके कारण सुखपूर्व्वक उनके दिन बीतते थे। बाबू अयोध्याप्रसाद हिन्दी, फ़ारसी घर पर पढ़कर ज़िलास्कूल में अङ्गरेज़ी पढ़ने लगे। कहते हैं कि बचपन ही से इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। हिन्दी के समाचारपत्र आदि पढ़ने की रुचि लड़कपन ही से इनमें थी। जब आप एण्ट्रेन्स क्लास में जाने को थे तभी आपके पिता की मृत्यु हो गई। कई कारणों से पिता की मृत्यु के बाद इनको अध्ययन छोड़ना और पुस्तक-विक्रय की दूकान के कार्य्य को देखना पड़ा। फिर आप कुरहनी के माइनरस्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हुए और बहुत दिनों तक वहां रहे। उस काम को छोड़कर बाबू साहब मुज़फ़्फ़रपुर में रहने और सिविलियन साहबों को हिन्दी पढ़ाने लगे। एक साहब की कृपा से उन्हें कचहरी में एक नौकरी मिली। कचहरी के कई विभागों में रहकर अपनी कार्य्यदक्षता से बाबू साहब कलेक्टर साहब के पेशकार हुए। इस पद पर आज १९ वर्ष से आप काम करते थे।

बाबू साहब हिन्दी और फ़ारसी के विद्वान् थे ही। इसके अतिरिक्त अङ्गरेज़ी में भी आप ने अच्छी योग्यता सम्पादन कर ली थी।

बाबू साहब चरित की उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठा, असाधारण धैर्य्य और साहस आदि सद्गुणों से विभूषित थे। जिस कार्य्य में आप लग जाते थे और जिस कार्य्य को आप सत्य और उत्तम समझते थे, उसको आप बिना किये नहीं रहते थे। यही कारण था कि बाबू साहब का अपने मित्रों से अक्सर मतभेद हो जाता था*।

---

* मुज़फ़्फ़रपुर के एक सज्जन और और बातों के सिवा, जो इस चरित में आ गई हैं, यह भी लिखते हैं :—"बाबू अयोध्याप्रसाद को बहुत आदमियों के साथ बैठना या उनसे मिलना पसन्द न था। वे समालोचक भी थे। उनकी समालोचना से घर बाहर का कोई भी आदमी न छूटा होगा। वे कभी कभी लोगों पर लेख भी लिखा करते थे। वे पहले दरजे के हठी थे। पचीसी निकल जाने बाद वे साधु-समागम और साधु-सत्कार भी करने लगे थे। उनका बनवाया हुआ एक शिवालय भी है। उनका जितना काम था सब विलक्षण था"। बाबू साहब के हठी और विलक्षण होने का एक प्रमाण यह है कि आप लोगों की ख़ानगी चिट्ठियां तक छाप छाप कर उनकी ग़लतियां बताते थे। उनके कुछ काग़ज़ों की हमने एक मिसल बना रक्खी है जिससे उनके स्वभाव की विलक्षणता ख़ूब ज़ाहिर होती है। सं० स०

हिन्दी भाषा के लिए बाबू साहब ने वे काम किये जिनको बहुत थोड़े ने हो किया होगा। हिन्दी भाषा की उन्नति के हेतु उन्होंने इतना द्रव्य ख़र्च किया जितना कितने राजा महाराजों ने भी नहीं किया। तभी तो कहना पड़ता है कि बाबू साहब की अकाल-मृत्यु से हिन्दी-साहित्य को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। बाबू साहब के जीवन का प्रधान उद्देश्य हिन्दी की उन्नति ही करना था। यह बात बहुतों को शायद खटकेगी; किन्तु इस बात को सत्यता का प्रमाण वे ही दे सकेंगे जिनको बाबू साहब के साथ वार्तालाप अथवा पत्रव्यवहार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। खड़ी बोली के पद्य के प्रचार हो जाने ही को वे अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते थे। जिस प्रकार भक्त को अपने उपास्य देवता के चरण-कमल का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य जान पड़ता है, उसी प्रकार बाबू साहब खड़ी बोली के पद्य का प्रचार हो जाना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे। इसके लिए वे सदा व्यस्त रहते थे। जहां कहीं इसके विरुद्ध कुछ छपता था वहां वे इसके आन्दोलन की पूरी फ़ाइल भेजकर शास्त्रार्थ करने पर तय्यार हो जाते थे। तात्पर्य्य यह है कि आप बराबर इसी चिन्ता में रहते थे कि खड़ी बोली में पद्य का पूर्ण प्रचार हो जाय। इसके लिए सब प्रकार ख़र्च करने और कष्ट सहने को भी वे प्रस्तुत रहते थे। जब मुझसे आप मिलते थे, चाहे उनके डेरे पर, अथवा आफ़िस में, अथवा रास्ते में, उनका प्रथम प्रश्न यही होता था कि—"कहिये कुछ नई लिटररी न्यूज़ (Literary news) है?" बाबू साहब का यह प्रश्न मुझको जन्मभर स्मरण रहेगा।

हिन्दी-भाषा में प्रेम का बीज बाबू साहब के हृदय में बचपन ही में पड़ा था। सन् १८७७ ई० में बाबू साहब ने "हिन्दी-व्याकरण" लिखकर प्रकाशित किया, जिसके द्वितीय संस्करण को खड्ग-विलास प्रेस ने छापा है। यह व्याकरण एक निराले ढङ्ग का है। इसको बाबू साहब ने अङ्गरेज़ी व्याकरण की रीति पर लिखा है। ग्रियर्सन साहब इनके व्याकरण के विषय में लिखते हैं—

"It contains a number of points which have not been dealt with in any other Hindi Grammar written in the Vernacular. It seems to be written in intelligible language and well-adopted for school purposes."

अर्थात् इस व्याकरण में कई ऐसी बातें हैं जो किसी दूसरे हिन्दी-व्याकरण में नहीं पाई जाती हैं। यह पुस्तक उत्तम और सरल भाषा में लिखी गई है और स्कूलों के लिए परमोपयोगी है।

इस व्याकरण के अन्त में बाबू साहब ने लिखा है कि छन्दो-विचार का प्रकरण दूसरे भाग में छपेगा। उसी साल बाबू साहब का ध्यान इस विषय पर आकर्षित हुआ कि जिस ठेठ हिन्दी (खड़ी बोली) में हिन्दी के गद्य लिखे जाते हैं, उसी में पद्य न लिखे जाकर ब्रजभाषा में लिखे जाते हैं, यह हिन्दी-साहित्य में एक बड़ी भारी त्रुटि है। अतएव बाबू साहब ने चाहा कि जिस बोली में गद्य लिखा जाता है उसीमें पद्य भी बनें। क्योंकि मन के सब भावों का आविर्भाव, जब तक खड़ी बोली में पद्य न बनेंगे, तब तक नहीं हो सकेगा। सन् १८८७ में बाबू साहब ने "खड़ी बोली पद्य," भाग को लिखा और छपवाकर बिना मूल्य बाँटा। उसकी भूमिका में आप लिखते हैं—"सन् १८७७ ई० में मैंने 'हिन्दी-व्याकरण' लिखा था कि जिसके अन्त में 'छन्दो-विचार' के विषय में दूसरे भाग में लिखने को मैंने सूचना दी थी। मैं भाषा छन्द को हिन्दी-छन्द नहीं मानता हूं और इसी लिये छन्दो-विचार लिखने के पहले हिन्दी छन्द, जिसको मैं मानता हूं, इस पुस्तक में दिखलाता हूं......... खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रज भाषा को जगह देना और ब्रज भाषा शब्दों को हिन्दी में Poetical License समझना हिन्दी व्याकरण को, मेरी समझ में, भूल है। ......चन्द की हिन्दी को मैं 'पुरानी हिन्दी' और आधुनिक हिन्दी को 'खड़ी बोली'

कहता हूं"। इस पुस्तक के छपने पर इस विषय में हिन्दोस्थान पत्र में कई लेख खड़ी बोली श्रार ब्रज भाषा के पद्य के पक्ष श्रार विपक्ष में प्रकाशित हुए थे। उस श्रान्दोलन में जितने लेख समाचारपत्रों में छपे थे उनको बाबू साहब 'खड़ी बोली श्रान्दोलन' नामक पुस्तक में पुस्तकाकार छपवाते थे। इसके कोई ७२ पृष्ठ छप चुके हैं। श्राशा है कि मुज़फ्फ़रपुर की हिन्दी-भाषा प्रचारिणी सभा शेष को छपवाकर इस पुस्तक को पूरा करेगी। बाबू साहब ने खड़ी बोली, श्रथवा हिन्दी, के पाँच भेद माने थे—(१) ठेठ हिन्दी, (२) पण्डित स्टाइल की हिन्दी, (३) मुन्शी स्टाइल की हिन्दी, (४) मैालवी स्टाइल की हिन्दी श्रार (५) यूरेशियन स्टाइल की हिन्दी। "खड़ी बोली पद्य"-भाग, में प्रथम तीनों स्टाइलों के पद्य संग्रहीत हैं। श्रार उसके दूसरे भाग में, जिसको बाबू साहब ने सन् १८८९ ई० में छपवाया था, मुख्यतया शेष दोनों स्टाइलों के पद्य हैं। सन् १८८९ ई० में "खड़ी बोली पद्य"-भाग, को श्रीमान् फ्रेडिक पिनकाट साहब द्वारा सम्पादित कराकर लन्दन में बाबू साहब ने बहुत ख़र्च करके छपवाया श्रार बिना मूल्य बाँटा। यही प्रथम पुस्तक हिन्दी साहित्य के विषय में थी जो लन्दन में छपी थी। फ्रेडिक साहब की सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ने योग्य है। बाबू साहब के पाँचों स्टाइलों पर टिप्पणी करके पिनकाट साहब लिखते हैं—

"His object is to induce his countrymen to abandon the use of the archaic Braj dialect in their poetic effusions, and to persuade those who favour Urdû to use Nâgari instead of Arabic letters for their verses In fact, he purposes a compromise; one party is asked to abandon a cherished dialect of their language, and the other party to give up a customary method of writing it. By conforming to the compiler's suggestion, all parties meet on the common ground of the **Kharí Bolí* or "correct speech," understood by all, and living, growing, and changing, with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand occupation, worthy of the fullest realization; for it would unite the mental efforts of a great province, and remove the greatest obstacle to the intellectual development of Northern India."

खड़ी बोली पद्य की समालोचना लन्दन के Overland Mail में भी छपी थी। श्रीमान् फ्रेडिक पिनकाट साहब ने जो चिट्ठियां विलायत से बाबू साहब के पास भेजी थीं उनमें एक जगह वे लिखते हैं–

"Your endeavour to induce your countrymen to employ Khari Boli in Poetry in preference to Braja Bhasha is worthy of all praise and encouragement. When Poetry is written, it should certainly be in the best and most elegant form of spoken language at the time it is written. Chand Bardai wrote in the language he spoke; so did Kabir; so did Tulsi Das; so did Nanak; and so do all poets who speak out the thoughts of their hearts. It is only artificial versifiers who make up verses about feelings which are not their own, who waste their time in composing in old, archaic or peculiar forms of speech. The result is that the taste of the people becomes corrupted, and more attention is paid to the sound of the verse, than to its sense......The goodness of Poetry depends more on the ideas expressed than on the language used. Too many modern Indian writers seem to think that a collection of high sounding words, in measured lines, constitutes Poetry; hence they prefer the older forms of Hindi to give dignity to their compositions."

बाबू श्रयोध्याप्रसाद के खड़ी-बोली श्रान्दोलन का सम्पादन पण्डित भुवनेश्वर मिश्र करते थे। पण्डितजी को समय कम रहता है। इस कारण उस का सम्पादन बाबू साहब की ज़िन्दगी में समाप्त नहीं हो सका। मुज़फ्फ़रपुर के बाबू युद्धविक्रमराय ने भी बाबू साहब को इसके प्रकाशन में सहायता दी थी। बाबू साहब ने उसके शेष भाग को छपवाकर प्रकाश करने की प्रतिज्ञा की है, जिसके लिए श्राप

* खड़ी बोली का अर्थ साहब नहीं समझे। स० सं०।

खड़ी बोली के प्रेमी-मात्र के धन्यवाद के पात्र होंगे। बाबू साहब यहां के कलक्टर साहब से बाबू अयोध्याप्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दिलाने में भी परामर्श कर रहे हैं, जिसके लिए आपको धन्यवाद है। मुज़फ़्फ़रपुर के डिस्ट्रिक् बोर्ड को उचित है कि Literary pension की भाँति बाबू अयोध्याप्रसाद के पुत्र को कुछ सहायता दे। आशा है कि हम लोगों के सुयोग्य ज़िलाधीश मिस्टर लेविंज (Mr. Levinge) इस पर विशेष ध्यान देंगे।

खड़ी बोली के विषय में "चम्पारणचन्द्रिका" और "हिन्दोस्थान" में भी आन्दोलन हुआ और उक्त बाबू साहब की उत्तेजना से बाबू गोविन्द प्रसाद ने खड़ी बोली के कई उत्तमोत्तम पद्य चम्पारणचन्द्रिका में छपवाये। उक्त पत्र में बाबू साहब ने यह भी सूचना दी थी कि जो खड़ी बोली पद्य में श्रीरामचन्द्र का यश वर्णन करेगा उसको प्रति पद्य के लिए एक एक रुपया पुरस्कार मिलेगा। बङ्गाली लोग भी पहले मिथिला-भाषा में कविता करते थे और तिरहुत के पण्डित विद्यापति मिश्र की कविता को उस समय वे लोग आदर्श समझते थे। किन्तु पीछे से उन लोगों ने अपनी बोलचाल की भाषा में कविता करनी शुरू की जिसके कारण आज बङ्गाली-साहित्य की इतनी उन्नत्ति हुई है। अतएव यदि चेष्टा की जाय और खड़ी बोली में पद्य बनाये जांय तो हिन्दी-साहित्य की भी वैसी ही उन्नति हो सकेगी। बाबू अयोध्याप्रसाद ने बहुत खर्च और बहुत परिश्रम करके लोगों का ध्यान इस सुधार की ओर आकर्षित किया। इसके लिए वे हिन्दी के पठित-समाज मात्र के धन्यवाद के पात्र हैं। यह मुज़फ़्फ़रपुर,—नहीं बिहार,—के लिये अत्यन्त गौरव की बात है। हर्ष का विषय है कि बाबू साहब खड़ी बोली पद्य की उन्नति का "श्रीगणेशायनमः" ख़ुद देख गये। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने भी बाबू साहब के अत्यन्त परिश्रम और पत्र व्यवहार और प्रस्ताव करने पर खड़ी बोली में पद्य बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। यह विषय अब विवाद का नहीं रहा। तब भी देखते हैं कि किसी किसी के मस्तक में यह बात अब तक नहीं घुसती। बाबू राधाकृष्णदास जी ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका की दिसम्बर १९०० की संख्या में स्वीकार किया है कि उक्त बाबू साहब ही इस आन्दोलन के पिता और अगुआ हैं और बाबू श्यामसुन्दरदास, भारतमित्र, पण्डित श्रीधर पाठक और श्रीराधाचरण गोस्वामी आदि ने भी उनको इसका अगुआ क़रार दिया है।

इधर भी बाबू साहब ने हिन्दी की उन्नति के हेतु कई काम किये। बङ्गाल के श्रीमान् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर साहब की सेवा में उन्होंने एक मेमोरियल इस विषय का भेजा कि प्रायमरी (प्रारम्भिक) और मिडल परीक्षा की पाठ्य पुस्तकें केवल देवनागरी अक्षरों में छापी जाँय; उर्दू में न छापी जाँय; क्योंकि बिहार की कचहरियों में केवल नागरी अक्षर जारी हैं। बाबू साहब बर्दवान के महाराज के पास भी एक मेमोरियल के साथ डेप्युटेशन ले गये थे। महाराजा ने दिल्ली-दर्बार के समय हिन्दी के विद्वानों की एक सभा करने में सहायता देनी स्वीकार भी की थी। किन्तु बाबू साहब के द्वारा बहुत चेष्टा की जाने पर भी काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने सभा करना तो दूर रहा एक सूचना छपवा दी कि सभा करनी आवश्यक ही नहीं है। काशी की सभा के डेप्युटेशन में बाबू साहब दिल्ली भी गये थे; किन्तु उस डेप्युटेशन ने जो कार्य्य किया वह उसकी सभा ही जानती है। बाबू साहब समय समय पर अनेक छोटी पुस्तकें और लेख आदि भी छपवाते और बाँटते रहे-जैसे "मौलवी साहब के छन्द भेद", "खड़ी बोली के अधिकारी" आदि। कई प्रसिद्ध लेखकों के लेखों पर बाबू साहब की समालोचनायें भी निकलीं। जब पण्डित श्रीधर पाठक जी मुज़फ़्फ़रपुर में आबपाशी कमीशन के साथ गये थे, तब बाबू साहब ने अपनी और यहां के कई सज्जनों की ओर से

पण्डित जी को हिन्दी के सुलेखक होने के उपलक्ष्य में एक "एड्रेस" भी दिया था।

बाबू साहब के कई लेख लिखे पड़े हैं। आप हिन्दी का सिलसिलेवार इतिहास छपवाना चाहते थे। उसके लिए आपने बहुत सी सामग्री इकट्ठी भी करली थी। स्थानीय हिन्दीभाषा-प्रचारिणी सभा तथा आरा की सभा का परम धर्म्म है कि बाबू साहब की एक उत्तम जीवनी और उनका अधछपा हुआ "खड़ी बोली आन्दोलन" आदि छापने का प्रबन्ध करें।

बाबू साहब के एक पुत्र क़रीब १० वर्ष का है। ईश्वर उसको चिरञ्जीव रक्खे।

चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा।

शिशिर-पथिक।

[एक पथिक स्वदेश को लौट रहा है। इसने थोड़ी ही उम्र में सेना के अफ़सर, एक मेजर, के कहने में आकर अपना देश छोड़ा; घर में किसीसे कहा भी नहीं। तब से निरन्तर अङ्गरेज़ी सेना के साथ साथ वह एक देश से दूसरे देश में भ्रमण करता रहा। उसकी नवागता वधू बहुत दिनों तक उसके आसरे में रही; अन्त में निराश होकर अपने पिता के घर आकर वह रहने लगी। वहां पर उसने अपने वृद्ध पिता की सेवा तथा पथिकों के सत्कार का व्रत लिया। दैव-संयोग से आज स्वयं उसका पतिही पथिक के रूप में उसके सामने आकर उपस्थित हुआ है।]

[१]

विकल, पीड़ित पीय-पयान ते
चहुँ रह्यौ नलिनी-दल घेरि जो,
भुजन भेँटि तिन्हैं अनुराग सौँ
गमन-उद्यत भानु लखात हैं।

[२]

तजि तुरन्त चले, मुख फेरि के,
शिशिर-शीत-सशंकित जीव हीँ;
विहग आरत बैन पुकारते
रहि गये, पर ताहि सुनी नहीं।

[३]

तनि गये सित ओस-वितान हू,
अनिल झार बहार धरा परी,
लुकन लोग लगे घर बीच हैं
विवर भीतर कीट पतङ्ग से।

[४]

युग भुजा उर बीच समेटि कै
लखहु आवत गैयन फेरि ये
कँपत कम्बल-बीच अहीर हू
भरमि भूलि गई सब तान है।

[५]

तम भयङ्कर कारिख फेरि कै
प्रकृति दृश्य कियो धुँधलो सबै;
बनि गये अब शीत-प्रताप ते
निपट निर्जन घाट अरु बाट हू।

[६]

पर चलो यह आवत है, लखो,
विकट कैान हठी हठ ठानि कै?
चुप रहैं, तब लैं जब लैं कोऊ
सुजन, पूछनहार मिलै नहीँ।

[७]

शिथिल गात, महा गति मन्द है
चहुँ निहारत धाम विराम को;
उठत धूम लख्यौ कछु दूर पै,
करत श्वान जहाँ रव घोर हैं।

[८]

कँपत आइ भयो छिन मैं खड़ो
युग कपाट लगे इक द्वार पै;
सुनि परयौ "तुम कैान!" कह्यौ तबै,
"पथिक दीन दया इक चाहतो"।

[९]

खुलि गये झट द्वार धड़ाक से
धुनि परी मधुरी यह कान में।
"निकसि आइ बसैा यहि गेह मैं
पथिक वेगि सकोच बिहाइ कै"।



बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ।

[१०]

पग धरयौ तब भीतर भौन के
अतिथि आवन आयसु पाइ कै,
कठिन-शीतज-ताप-विघातिनी
अनल दीर्घ-शिखा जहँ फेँकती ।

[११]

चपल दीठि चहूँ दिसि जाइ के
पथिक की पहुँची इक कोन मेँ;
वय-पराजित जीवन-जंग में
दिन गिनै नर एक परो जहाँ ।

[१२]

सिर-समीप सुता मन मारि कै
पितहिँ सेवति सील सनेह सोँ
तहँ खड़ी नत गात, कृशाङ्गिनी
लसति वारि-विहीन मृणाल सो ।

[१३]

लखि फिरी दिसि आवनहार के
विमल आसन इङ्गित सों दयो;
अतिथि बैठि असीस दयो तबै
"फलवती सिगरी तुव आस हो" ।

[१४]

मृदु हँसी, करुणा-रस-संगिनी
तरुनि आनन ऊपर धारि के
कहति "हाय पथी ! सुनु बावरे,
न तरु नीरस में फल लागई ।

[१५]

"गति लखी विधि की जब वाम मैं
जगत के सुख सोँ मुख मोरि कै,
पितृ-निदेश निवाहन, औ सदा
अतिथि सेवन, के व्रत मैं लयो ।

[१६]

"अब कहो निज नाम, चले कहाँ ?
कहहु आवत हो कित तेँ, इतै ?
विचलि कै चित के किहि वेग सोँ
पग धरयौ पथ तीर अधीर ह्वै ? .

[१७]

"अखिल-आस-अमी रस सीँचि के
सतत राखति जो तन-बेलि हीँ,
पथिक ! बैठि अरे तुव बाट को
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ?

[१८]

"नयन कोउ निरन्तर धावहीं
तुमहिँ हेरन को पथ बीच में ?
श्रवण-बाट कोऊ रहते खुले
कहुँ, अरे, तुव आहट लेन को ?

[१९]

"कहु कहूँ तोहिँ आवत जानि कै,
निकटता तुव प्रेम-प्रदायिनी
प्रथम पावन कारण होत है
* चरन-लोचन-बीच बदाबदी ?

[२०]

"करि दया, भ्रम जो सुख देत है
सुमन-मञ्जुल-जाल बिछाइ कै
कठिन, काल, निरंकुश निर्दयो
छिनहिँ छीनत ताहि निवारि कै ?"

[२१]

दबि गयो उन बैननि-भार सोँ
पथिक दीन, मलीन, थको भयो;
अचल मूर्त्ति बन्यौ, पल एक लौँ
सब क्रिया तन की मन की रुकी ।

[२२]

बदन पौरुष-हीन विलोकि के
नयन नीरन उत्तर दै दयो—
"तव यथार्थ सबै अनुमान है
अति अलौकिक देवि दयामयी" !

---

* पहले निकट पहुँचने के लिए आँख और पैर के बीच बाज़ी लगती है; अर्थात् आँख के स्थान विशेष पर पहुँचने के पहले ही पैर पड़ जाता है जो कि मनुष्य के गिरने का कारण होता है। अतएव यहां लटपटाती हुई चाल से अभिप्राय है। रा० शु०

[२३]

अचल नैननि सो सुनिहारते
　　पथिक के अपनी दिसि देखि के,
इमि लगी कहने फिरि कामिनी
　　अति पवित्र दया-व्रत-धारिणी ।

[२४]

"कुशलता न अहै यहि में कछू,
　　अरु न विस्मय की कछु बात है;
*दिवस जो दुख की दिसि खेवही
　　गति लखैं मग में उलटी सबै" ।

[२५]

उभय मौन रहे कछु काल लैां;
　　पथिक ऊपर दीठि उठाइ कै
इक उसास भरी गहरी जबै
　　यह कढ़ी मुख ते वचनावली—

[२६]

"अवनि-ऊपर देश-विदेश में
　　दिवस घूमत ही सिगरे गये;
मिसिर, काबुल, चीन, हिरात की
　　चरण धूरि रही लिपटाइ है ।

[२७]

"पर-दशा-दिशि-मानस-योगिनी
　　लखि परी इकली भुव बीच तू ।
यह विशेष विचारि सुनावहूं
　　सुतनु ! मो तनु पै जु व्यथा परी ।

[२८]

"मन परै दुख की जब वा घरी
　　पलटि जीवन जो जग में दयो
चतुर "मेजर" के वश हैं, अहो
　　जब कियो अपनो सुख-नाश मैं ।

[२९]

"हित-सनेह-सने मृदु बोल सों
　　जब लियो इन कानन फेरि मैं ।
स्वजन और स्वदेश-स्वरूप को
　　करि दयो इन आँखिन ओट हा !

[३०]

"अब परैं सुनि वाक्य यही हमैं
　　'धरहु, मारहु, सीस उतारहू'
दिवस रैन रहै सिर पै खरी
　　अति कराल छुरी अफ़ग़ान की ।

[३१]

"पथिक हो, यह आस हिये धरे,
　　मम वियोगिनि भामिन को अजैां
अपर-लोक-पयान प्रयास ते
　　मम-समागम-संशय रोकि है ।

[३२]

"कहुँ यहीं इक मन्मथ गांव है
　　जहँ बनी बसती विधु-वंश की
तहँ रहे इक विक्रमसिंह जो
　　सुवन तासु यही रनवीर है ।"

[३३]

कहत ही इन बैनन के तहां
　　मचि गयो कछु औरहि रंग ही;
वदन अञ्चल-बीच छिपावती
　　वह परी गिरि भूतल भामिनी ।

[३४]

असम साहस वृद्ध कियो तबै,
　　उठि धरयो महि में पग खाट तें,
"पुनि कहो" कहि बारहि बार ही
　　पथिक को फिरि फेरि निहारई ।

[३५]

आशा त्यागो बहु दिनन की नेकु ही मैं पुरावै
लीला ऐसी जगत प््रभु की, भेद को कैान पावै ?

---

* जो संसारसागर में अपने दिनों को दुःख की ओर खे रहे हैं वे मार्ग में दूसरी वस्तुओं को (जैसा नैाका पर चढ़ के चलते समय देख पड़ता है) दूसरी ओर (उलटे) अर्थात् सुख की ओर जाती हुई देखते हैं । तात्पर्य्य यह कि जो लोग संसार में दुःख भोग रहे हैं वे समझते हैं कि उनको छोड़ कर और सब लोग सुख पा रहे हैं । यह मनुष्य का स्वभाव है । स्त्री का पति विदेश से नहीं फिरा, इससे यह पथिक को समझाती है कि अपनी प्रिया ही से मिलने वह जा रहा है । रा० शु०

देखो, नारी सुकृत-फल को बीच ही माँहि पाये;
भूलो प्यारो, निज-प्रियतमा-पास आयो, सुहायो।

रामचन्द्र शुक्ल।

वसन्त-वर्णन।

(कालिदास के ऋतुसंहार से)

[१]

प्रफुल्लचूताङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः।
मनांसि वेद्धुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये॥

❋

बैारे रसाल लसैं नव अंकुर
सो मनु बाननु कैा बन छायैा
भैांरें जु भैांरन की सुठि माल
सोई परतिंचा कैा भाव जनायैा
प्यारिन सों रस रंग के हेतु
रहैं जिनकैा जी सदा ललचायैा
ऐसे युवान के हीय कें बेधिवे
जोधा वसन्त प्रिये! अब आयैा

[२]

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥

❋

खिल रहे कुसुम द्रुमालि, अम्बु तल
पद्म जाल छविधाम लसै
युवतीं अधिक सकाम, पवन में
वन उपवन मधुगंध बसै
लगैं सुखाली साँझ दिवस की
तरुनाई से ताप नसै
प्रिये! सभी हो रहा मनोहर,
अहो आज ऋतुराज विषै

[३]

वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम्।
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः॥

❋

विमल बावड़ी वारि, विविध मणि
जटित चारु कटि तागड़ियां
त्यों शशि सुखद मयूख, सुरत
अभिलाष भरीं नव नागरियां
मुकुलित मधुमद मिलित, मदनव्रत-
सहकारी सहकार खरे
प्रिये! आय इन्को करता यह
ऋतु वसन्त सैाभाग्य भरे

(क्रमशः)

श्रीधर पाठक।

सरस्वती-अष्टक*।

[१]

अन्य हिन्दी सेवकों ने यत्न कर अविराम
हार मानी निज हृदय में; लिया जब विश्राम।
धन्य धन्य सरस्वती तू, पत्रिका अभिराम
जन्म ही के वर्ष तू ने कर दिखाया काम॥

[२]

नागरी का है किया तू ने विशेष प्रचार
वरन हमको चाहिये कहना, किया उद्धार।
किस प्रकार कृतज्ञता को हम दिखावैं आज?
धन्य केवल कह सकें हैं; ऋणी सकल समाज॥

[३]

है नहीं यद्यपि वयस्का; बड़ा तेरा ज्ञान
पा लिया है आज तू ने परम उच्च-स्थान।
बुद्धिमत्ता, विज्ञता से दिन व दिन सम्मान
बढ़ रहा है देश भर में पास, दूर, समान॥

[४]

देश के साहित्य-सेवक मानते हैं मान
वृद्ध, बालक, बालिका भी हैं करैं तव ध्यान।
हैं सभी तेरे अनुग्राहक महामतिमान
हैं गुणग्राहक प्रवर जो देश के विद्वान॥

---

* लेखक के विशेष आग्रह से हम इस कविता को प्रकाशित करते हैं—स० सं०

[५]
जगत के साहित्य-वन से पुष्परज को लाय
मधुर मधु मधुमक्षिका की भाँति आप बनाय।
नागरी-साहित्य-रस-मधु-भृङ्गवर-समुदाय
हैं जहां तक तू उन्हें देती सदा हर्षाय ॥

[६]
कौन होगा जो न लेगा उस सुधा का स्वाद
छोड़ प्रान्तिक-गर्व अपना और व्यर्थ विवाद ?
जो सुभागी चख सकेंगे वह रसाल प्रसाद
वे कदापि नहीं करेंगे नागरी-प्रतिवाद ॥

[७]
नागरी की वाटिका में कल्प-वल्लि समान
तू किया करती अमृतफल मास मास प्रदान।
सर्व्व साधारण प' उनका हो प्रभाव महान
यह विनय मेरा करैं स्वीकार श्रीभगवान ॥

[८]
चन्द्रमा की भाँति तेरा नित्य नित्य विकाश
ख़ूब फैलै विश्व में; हों शुभ्र भू-आकाश।
वर्षगाँठ करोड़ अपनी तू गिनै सहुलास
देख तुझको हो प्रसन्न सदैव 'सत्कविदास' ॥

सनातन शर्म्मा सकलानी।

रम्भा।

[१]
रूपवती यह रम्भा नारी;
सुरपति तक को यह अति प्यारी।
रति, धृति भी, दोनों बेचारी
इसे देख मन में हैं हारी ॥

[२]
इसके हाव हृदयहारी हैं;
हारी इससे सुरनारी हैं।
गति इसकी सबसे न्यारी है;
छबि नयनों को सुखकारी है ॥

[३]
जब यह अद्भुत भाव बताती;
बसन इधर से उधर हटाती।
नाभि-नवल-नीरज दिखलाती;
स्तनतट से पट को खिसकाती ॥

[४]
मुनि भी मोहित हो जाते हैं;
प्रचुर ताप तन में पाते हैं।
इसकी लीला कही न जाती;
गति इसकी न समझ में आती ॥

[५]
पहनी पारिजात की माला;
हरित वस्त्र सिर ऊपर डाला।
कर पल्लव किस भाँति उछाला;
श्रुति-कुण्डल क्या ख़ूब निकाला ॥

[६]
वेश विचित्र बनाया इसने;
मुख-मयङ्क दिखलाया इसने।
भृकुटी धनुपाकार मनोहर;
अरुण दुकूल बहुत ही सुन्दर ॥

[७]
मञ्जु-मृणाल-पराजयकारी
वाम बाहु आभूषणधारी।
किस प्रकार लटकाया इसने;
कमलों को शरमाया इसने ॥

[८]
कटि इसकी न भङ्ग हो जावे;
चलते कहीं न यह गिर जावे।
इससे त्रिबली-बन्ध बनाया;
विधि ने यह चातुर्य्य दिखाया ॥

[९]
इसका कुच-नितम्ब-विस्तार
सचमुच है अत्यन्त अपार।
दृष्टि युवकजन की जो जाती,
थक कर वहीं पड़ी रह जाती ॥

[१०]
शुक के सम्मुख जानेवाली;
सरस भाव बतलानेवाली।
नव-यौवन-मद से मतवाली;
सुर-नर-मुनि-मन हरनेवाली ॥

[११]

इसका चित्र सभी को भाया ;
रविवर्म्मा ने विशद बनाया ।
कौशल उसमें ख़ूब दिखाया ;
रुचिर रूप अच्छा उपजाया ॥

मलाबार ।

मलाबार का पुराना नाम केरल देश है। केर नारियल को कहते हैं। नारियल इस देश में बहुत होता है। इसीलिए इसका नाम केरल पड़ा। इस समय जितना भूभाग मलाबार के अन्तर्गत है, केरल कहने से उससे अधिक का बोध होता है; क्योंकि और भी दो एक ज़िलों की गिनती केरल में ही है।

मलाबार मदरास हाते का एक ज़िला है। वह १०° १५' और १२° १८' उत्तर अक्षांश और ७५° १४' और ७६° ५२' पूर्व देशांश के बीच में है। उसके उत्तर में दक्षिणी कनारा; दक्षिण में कोचीन और ट्रावनकोर के राज्य; पूर्व में कुर्ग और नीलगिरि पर्वत; और पश्चिम में अरब का समुद्र है। उसका क्षेत्रफल ५,७६५ वर्ग मील और आबादी २,५००,००० है। बोली वहां की मलयालम या मलयाली है। रहनेवाले वहां के मलाबारी या मलयाली कहलाते हैं। प्राचीन मलय पर्वत इसी ज़िले के अन्तर्गत है। यहां चन्दन बहुत होता है। मलयाली शब्द मलयाचल या मलयाचली का अपभ्रंश जान पड़ता है।

मलाबार के दो भाग हैं। उत्तरी मलाबार और दक्षिणी मलाबार। उत्तरी का सदर स्थान टेलिचरी है और दक्षिणी का कालीकट। पर ज़िले का सबसे बड़ा अधिकारी कालीकट ही में रहता है। वह मैजिस्ट्रेट भी है; कलेक्टर भी है; और पोलिटिकल एजण्ट भी है। कालीकट और टेलिचरी के सिवा पालघाट, कनानूर, बेपुर और बड़ागरा भी मलाबार के मशहूर शहर हैं। पर इन सब में कालीकट ही सबसे बड़ा है। वह बन्दरगाह भी है। वहां फ़ौज भी रहती है और बन्दरगाह का एक अफ़सर भी रहता है। कालीकट जाने के दो मार्ग हैं। एक थल की राह से, दूसरा जल की राह से। थल की राह से जाने में कालीकट तक बराबर रेल मिलती है। ख़ास कालीकट में मदरास रेलवे का स्टेशन है। जल की राह से जाने में, बम्बई में, जहाज़ पर सवार होना पड़ता है और रत्नागिरी, कारवार, मँगलोर, कनानूर और टेलीचरी होते हुए कालीकट को जाना पड़ता है।

मलाबार पहाड़ी देश है; पहाड़ी ही नहीं, जङ्गली भी है। समुद्र के किनारे किनारे पश्चिमी घाट पर्वत, ३००० से लेकर ७००० फ़ीट ऊंचा, बराबर चला गया है। वह बहुतही निबिड़ जङ्गल से व्याप्त है, जिसमें शेर, भालू, भेड़िये, हाथी और हिरन भरे पड़े हैं। इन जङ्गलों के भीतर, दूर दूर तक, समुद्र की खाड़ियों का जल भरा रहता है। मैदानों में भी जल की बहुत अधिकता है। कोटा, माही और पूर्णा इत्यादि नदियां भी इस ज़िले को अपने पानी से तर किया करती हैं। पानी, जङ्गल और पहाड़ों से प्रायः कोई भी कोना इसका नहीं बचा। यह प्रदेश हमेशा हरा बना रहता है; और नारियल, इलायची, सुपारी और केले के स्वाभाविक और अस्वाभाविक घने घने वनों और उपवनों से अपनी नैसर्गिक शोभा को सदैव बढ़ाया करता है। यहां के मलयानिल से दूर दूर तक का देश सौरभमय हो जाता है। इस प्रदेश ने संस्कृत कवियों को काव्य-रचना के लिए इतना मसाला दिया है कि शायदही कोई ऐसा कवि हुआ होगा जिस ने मलय और मलयानिल पर दो चार श्लोक न कहे हों। इसी मलयानिल-मण्डित देश के राजा के साथ, मलयस्थली में विहार करने की सिफ़ारिश, इन्दुमती से कालिदास, इस प्रकार, करते हैं—

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥